4187

सोमसी

tharahkardu.in

मुरली मनोहर मन्दिर, सुजानपुर टीहरा
जिला हमीरपुर हिमाचल प्रदेश

सोमसी

पर्वतीय कला, संस्कृति और भाषा की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 13 | अप्रैल, 87 | अंक 2

सम्पादक
डा० बंशीराम शर्मा

सहायक सम्पादक
सरोज सांख्यायन

सहयोगी
सुभाष कौशल

आवरण
ओम सुजानपुरी

50

जनवरी, अप्रैल, जुलाई व अक्तूबर में प्रकाश्य

लेखक द्वारा दिए गए तथ्यों तथा विचारों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 12.00 रुपये
एक प्रति : 3.00 रुपये

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी
क्लिफ एण्ड एस्टेट, संगरमल भवन,
शिमला-171001

सोमसी **अप्रैल, 1987**

इस अंक में

क्रमांक	लेख	लेखक	पृष्ठ
i	सम्पादकीय		
1	लोक साहित्य के अंग-प्रत्यंग	केशव शर्मा	1
2	हिमाचल संस्कृति में मार्कण्डेय	अमर देव अंगिरस	7
3	हिमाचली में 'आ' की ध्वनि और बर्तनी	श्याम लाल	11
4	सांस्कृतिक पर्व गुग्गा एवं सुबाथु जनपद	नरेन्द्र अरुण	24
5	बिलासपुर का दर्शनीय धार्मिक स्थल : बच्छरेटू मन्दिर	डॉ० लेख राम शर्मा	28
6	निरमण्ड-परशुराम पंचस्थली	शरभा नन्द श्रवण	31
7	लोक गीत-मादरी	बी० आर० जसवाल	37
8	बैचनाथ (बैजनाथ) शिव मन्दिर व आस-पास के धार्मिक स्थल	सुदेश दीक्षित	41
9	हाटेश्वरी मन्दिर की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि	मस्त राम चौहान	44
10	निणू लामण	शशिकान्त शास्त्री	47
11	हलकी भाषा गूढ़ रहस्य	दयानन्द सरस्वती	50
12	पांडुलिपियां व लेखन प्रक्रिया	कमल प्यासा	54
13	उत्तरी भारत का लोक देवता-गूगा	डॉ० दिनेश चन्द्र अग्रवाल	57
14	कुल्लू के राजा टेढ़ी सिंह एवं उसके वंशज	डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा	61
15	विविध विचित्र भारत	आशा शैली	66
16	मूण्डा यज्ञ का ऐतिहासिक महत्व	कृष्ण चन्द्र काएथ	68
17	जन मानस की दिव्य आस्था का केन्द्र दलाश (कुल्लू) महादेव का भव्य मन्दिर	ठाकुर दत्त शर्मा "आलोक"	73
18	धागों का त्यौहार रक्षा बन्धन	सुदर्शन डोगरा	78
19	विराट नगर हाटकोटि के देवालय	देवी दत्त शर्मा	81

सम्पादकीय

हिमाचल लोक संस्कृति का इतिहास लिखा जाना अभी शेष है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इस सम्बन्ध में जो सामग्री प्रकाशित हुई है, वही क्रमबद्ध इतिहास का आधार होगी। हिम भारती पत्रिका का प्रकाशन सन् 1979 में आरम्भ हुआ था। इससे पूर्व लोक सम्पर्क विभाग की मासिक पत्रिका हिमप्रस्थ में प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर के सम्बन्ध में मूल्यवान सामग्री प्रकाशित हुई है। सोमसी का प्रकाशन सन् 1975 से आरम्भ हुआ। इस पत्रिका की मुख्य विशेषता यह रही कि इसमें पर्वतीय संस्कृति, साहित्य तथा कलाओं से सम्बन्धित शोधपरक सामग्री के प्रकाशन के प्रति समर्पण भाव रहा। लोक संस्कृति का लोक साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। लोक साहित्य के अन्तर्गत वे समस्त आख्यान-उपाख्यान, लोक गीत, लोक नाट्य, लोक कलायें आदि आती हैं, जिनकी अभिव्यक्ति "लोक" द्वारा की जाती है। लोक नृत्य, लोक संस्कृति के आवश्यक अंग हैं परन्तु इनका अध्ययन करते समय यह ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि उन्हें जिस लय व ताल या कथानक पर आधारित किया जाता है, उसका भी अध्ययन किया जाए।

सोमसी पत्रिका का यह अंक लोक संस्कृति से सम्बन्धित विभिन्न विषयों की सामग्री से युक्त है। इसमें मार्कण्डेय, गुग्गा, परशुराम, बैजनाथ, हाटेश्वरी मन्दिर, लामण तथा नारद आदि पर लेखों के अतिरिक्त महादेव तथा प्रदेश के कुछ क्षेत्रों की धार्मिक परम्पराओं का विवेचन है। इस अंक की सामग्री शोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण न भी हो, परन्तु इसका उपयोग शोधकर्त्ता किन्हीं टूटे हुए सांस्कृतिक तन्तुओं को जोड़ने के लिए करेंगे, इसमें संदेह नहीं है।

सोमसी के इस अंक का प्रकाशन शीघ्रता में हुआ है और यह कुछ समय से विलम्बित अंकों की कड़ी का अन्तिम अंक है। क्योंकि इसे निश्चित तिथि तक मुद्रित किया जाना आवश्यक था अत: मुद्रण तथा कागज की दृष्टि से यह अन्य अंकों से तनिक भिन्न दिखाई देता है।

इस पत्रिका के जुलाई, 1987 अंक से पत्रिका का आवरण पृष्ठ ऑफ्सेट प्रैस में प्रकाशित होगा तथा इसे अधिक आकर्षक बनाने के उद्देश्य से बढ़िया कागज प्रयोग में लाया जायेगा। हिमभारती

पत्रिका के अंकों का भी जून, 1987 से कायांकल्प किया जानो निर्णीत हुआ है। पत्रिका में सामग्री का महत्व सर्वाधिक होता है अत: सुधी साहित्यकारों से यह निवेदन करना सामयिक ही होगा कि वे अकादमी की दोनों पत्रिकाओं के लिए स्तरीय रचनाएं भेजें तथा प्रकाशित सामग्री के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करें।

पत्रिका के अगले अंकों में यह भी प्रयत्न किया जाएगा कि इसमें अब तक प्रकाशित सामग्री का संक्षिप्त विषय बार विवरण अंक के उद्धरण के साथ प्रकाशित किया जाए। इससे शोधकर्त्ताओं को अपने शोध विषय से सम्बन्धित प्रकाशित सामग्री की खोज करने में सुविधा होगी।

पत्रिका के बिलम्बित अंकों का अध्याय इस अंक के साथ समाप्त हुआ अब हमारा भरसक यत्न रहेगा कि सोमसी व हिमभारती दोनों पत्रिकाएं पाठकों को अपने नए कलेवर में निर्धारित समय में उपलब्ध कराई जाएं। इसके लिए साहित्यकरों से सहयोग का निवेदन है।

—डॉ० बंशी राम शर्मा

लोक साहित्य के अंग-प्रत्यंग

—केशव शर्मा

लोक साहित्य हो या साहित्य दोनों का सम्बन्ध लोकजीवन से होता है। लोक साहित्य समाज का मौखिक भण्डार होता है तो साहित्य लिखित लोक साहित्य सीधा लोगों में से पनपता है अतः सामुदायिक होता है बिना रचयिता की पहचान के बिना किसी के नाम के प्रचलित रहता है। साहित्य किसी व्यक्ति से जुड़ा होता है किसी नाम से जुड़ा होता है। लोक साहित्य स्वतः प्रेरणा का परिणाम होता है जबकि साहित्य चिंतन का परिणाम होता है। लोक साहित्य जीवन की गतिशीलता की स्वतः अभिव्यक्ति होता है और साहित्य जीवन की गतिशीलता की नियमावली होता है।

परन्तु साहित्य पर लोक साहित्य का प्रभाव पड़ता है क्योंकि नियमन के लिये माध्यम की आवश्यकता होती है। इस तरह के वस्तुपरक व ठोस माध्यम लोक साहित्य में होते हैं अथवा हैं। उन्हीं को हम उसके अंग-प्रत्यंग मानकर यहां उनकी चर्चा कर रहे हैं।

लोक साहित्य के मुख्य रूप में निम्नलिखित अंग-प्रत्यंग हैं :—

(1) लोक कथा, (2) लोक गाथा, (3) लोक गीत, (4) लोक नृत्य, (5) लोक नाटक, (6) लोक कला, कहावतें व पहेलियां।

इन सब का यथा क्रम विवरण प्रस्तुत है।

(1) लोक जीवन में हमेशा से गतियता रही। लोक अर्थात् जन अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए क्रियाशील रहता है। वह आखेट करता, पशु पालता, जंगल काटकर साफ करता और खेत बनाता, खेतों में अन्न बीजता और अन्य कितने ही काम करता जिनमें आजीविका का साधन प्राप्त करने के लिए वह औजारों व हथियारों की भी रचना करता, अपने जीवन के लिये अति उपयोगी इस क्रिया की अनवरत पुनः पुनः करने की आवश्यकता रही। यह पुनरावृति लोक को या जन को कभी बुरी नहीं लगी।

इस प्रकार लोक अनुभवों के स्मरण रखनें व उनके याद रहने की जांच करने के लिए उसको अन्य लोगों को सुनानें की प्रक्रिया विकसित हुई। इसी प्रकार की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप कथा कहने की परम्परा चली। कथा में कथ्य वास्तविकता पर आधारित हों अथवा काल्पनिक हो इसका अन्तर बाद में ही स्पष्ट हो पाया होगा। वास्तव में कथा में वर्णित घटना घटी है या नहीं, घटी है

इसको जानने की किसी की एकदम इच्छा नहीं होती। बस इतना होता है कि कथा का कथ्य सत्य जैसा लगे। सत्य जैसा वह तभी लग सकता है जब उसमें घटना के आधार वस्तुगत जैसे लग सकें। इसका अर्थ यह हुआ कि कथा में कही गई बातें बीती या गुजरी घटनाओं की छापसे युक्त हों तभी वे सत्य सी लग सकती हैं। यही बात पात्रों के बारे में कही जा सकती है, कथा के पात्र बिल्कुल वैसे लगें जैसे लोगों के रूप में अस्तित्व मान हों। जैसे कथा में किसी परी का वर्णन आता है तो कथा कहने वाला उस परी के रूप का मानवीयकरण करता है। वह कहता है, वह परी बहुत सुन्दर थी, इतनी सुन्दर कि राजकुमारी भी इसके सामने न टिक सके। यदि वह किसी राक्षस का वर्णन करता है तो उसको करता तो आदमी के रूप में ही प्रस्तुत पर साथ में इतना और जोड़ देता है कि उसके सिर पर बैल की तरह के सींग थे। इन उदाहरणों में परी राजकुमारी जैसी बताई गई और राक्षस आदमी जैसा। यही तत्व होता है जो किसी भी घटना व पात्र को यथार्थ जैसा बनाता है।

कथा में कथोपकथन का भी कम महत्त्व नहीं है। कथाओं के पात्र चाहे मनुष्य रूप में हों या पशु-पक्षियों के रूप में, उनको उसी भाषा या बोली में बातचीत करनी चाहिए जिस भाषा या बोली में कथा कहने वाला कथा कहता है और जो भाषा या बोली कथा सुनने वाले की होती है। तभी तो कथाओं के तोते, मैनायें, भालू, शेर, लोमड़ियां, तीतर सब मानव की भाषा या अथवा बोली में बात करते हैं।

यही बात कथा के देशकाल, स्थान-परिवेश के बारे में है। कथा में वर्णित स्वर्ग के महल धरती पर के महलों या भवनों जैसे बागों-बागिचों के फल, पेड़, पौधे धरती पर के फल पेड़-पौधों जैसे, नदियां, झरने, खेत-पहाड़ सब धरती जैसे ही होने चाहियें।

परन्तु यह सारा कथ्य और सारी कथा लोक के मानस में विकसित होती है और फुर्सत के समय में यह लोक रंजन का कार्य सम्पन्न करने के लिये कही जा रही है अतः लोक कथा कहलाती है।

दुनिया में एक भी जाति, एक भी मानवीय समूह ऐसा नहीं जिसमें कथा कहने का प्रचलन न हो और सब जातीय समूहों की कथाओं में समग्र रूप से पाने जातीय स्वरूप की छाप रहती है। यह छाप विश्वास, परम्परा, काम, दर्शन हर रूप में विद्यमान रहती हैं।

अतः लोक कथा लोक मनोरंजन के साथ ही साथ लोक जीवन की काल विशेष की यथार्थ जैसी परन्तु आकर्षक झांकी होती है। समाज के विश्लेषण का मूल्यांकन के लिए लोक कथा बहुत उपयोगी है।

(2) लोक गाथा : लोक जीवन का ऐतिहासिक घटनाओं के अनुरूप या उनसे मिलता-जुलता किस्सा सुनाना या उसे गाकर सुनाना भी परम्परा से चला आया है। चूंकि आजसे पच्चास वर्ष पहले या इन वर्षों के समय में हिमाचल प्रदेश में अनेकों जातीय व क्षेत्रीय समूह थे जो लड़ते, झगड़ते, संघर्ष करते, अनेकों सदियों व अनेकों घटनाओं के इतिहास की विरासत को अपने पास संजोये यहां एक अथवा दूसरी जगह रह रहे थे। इतिहास की उस थाती को वे समय मिलते ही खोलकर

निकाल लेते और बीते युगों की घटनाओं के किस्सों को श्रोताओं को सुनाना आरम्भ कर देते। इन लोक गाथाओं में युद्धों के मनोरंजक दृश्यों, वीरता के कारनामों व प्रेमी-प्रेमिकाओं के बाद संवादों को कथा गाने वाले गाकर सुनाना आरम्भ करते। इन गाथाओं को कहीं पर भार था, कहीं पर भारता कहीं पर बारें कहा जाता है।

इन सब किस्सों में किसी राजा की वीरता का बखान होता है या किसी देवता के चमत्कारों की चर्चा होती है, किसी प्रेमी प्रेमिका का और उनके प्रेम में विघ्न डालने वालों की चर्चा होती है।

लोक गाथाओं का मुख्य तत्व उसकी एक निश्चित कहानी होता है, कहानी एक विशेष परिवेश की होती है, किसी विशेष काल में घटित हुई होती है अथवा ऐसा लगता है कि किसी काल में वह वास्तव में रही होगी। परन्तु गाथा में तकांत या पद्यमय शब्दावली या बोली उसे लोककथा से भिन्न बना देती है। लोक कथा की प्रस्तुति गद्य में होती है जबकि लोक कथा की पद्य में।

लोक कथा सुनाई जाती है जबकि लोक गाथा सस्वर गाई जाती है। लोक गाथा सुनाने वाला तो एक व्यक्ति हो सकता है परन्तु गाने वाले तो एकाधिक ही चाहिए लोकगाथा की परम्परा को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि लोककथाओं को पद्यमय रूप में व गायन के तौर पर पीढ़ी हर पीढ़ी सिखाया जाता रहे।

लोक कथा जहां अंगीठी या चुल्हे के पास एक परिवार में ही सुनाई जा सकती है अथवा अधिक लोगों के बीच भी वहां लोक गाथा सुनाने वालों की निश्चय ही काफी गिनती होनी क्योंकि लोक गाथा में सुनाने वालों की कला कमोवेश व्यावसायिक सी होता है। इस कला विद्या को जिंदा रखने के लिए इसकी नियमित शिक्षा, नियमित आयोजन और आयोजन के साथ कुछ आर्थिक मदद की आवश्यकता है।

समय के बीतने के साथ नई जीवन पद्धति का इस कला विधा से कोई ठीक ताल मेल नहीं बैठता क्योंकि विरसों का अब यह युग नहीं है।

(3) लोकगीत : गीत चाहे उसका कोई सा भी रूप क्यों न हो लोकरूप अथवा रचना रूप, उसमें समात्मकता का तत्व है, गायक को व श्रोता दोनों को मुग्ध करने का गुण है। रागात्मकता व आनन्दानुभूति सम्मोहन का सृजनकर देती है। इस प्रकार लोक गीत लोक जीवन की आनन्दानुभूतियों की अभिव्यक्ति का एक रूप है। लोक गीतों में सिर्फ आनन्द का उद्रेक व सृजन करने वाले तत्व ही नहीं होते ऐसे मार्मिक प्रसंग भी होते है जो गायक व श्रोता के मन में करूणा, प्रेम, विराग, भय आदि भी पैदा कर सकते हैं। हिमाचल के लोक गीतों में सुख और दुःख दोनों को ही स्थान मिला है। पर्वतीय क्षेत्रों के पेड़-पौधों, पक्षी-पशु, नदी-नाले यहां की हवायें, यहां के घने वन, यहां के गर्जन करते बादल सभी कुछ तो स्वरों की, अद्‌भुत स्वर संसार की रचना करते हैं। जब कोयल की कूक वादी में गूंजती है या मोर का वेदना सना स्वर सुनाई देता है या नदी की अनवरत कल-कल का शोर कानों में घुलता हैं तो ये परिस्थितियां किसी के भी मन को कुछ गा उठने, गुन-गुना डालने के लिये उतेजित करती हैं।

यहां पर सबसे अधिक लोकगीत प्रेमी-प्रेमिका के विरह से जुड़े मिलते हैं। युगों से यहां पर प्रेमी रहते आये है. प्रेमिकाऐं रहती आई हैं और उनका एक दूसरे से बिछुड़ना हर युग में बहुत कष्ट दाई अनुभव हुआ है। और अपनी इस दुःख की स्थिति में उनके मुंह से या उनकी वेदना से विह्वल होकर लोक गायक के या गायिका के मुंह से बोल फूटते रहे हैं।

अपने आनन्द व रंजन के लिए लोक में जन्म, विवाह, विदाई, मिलन, प्यार आदि से सम्बधित हजारों-हजार गीत रचे हैं, गाये हैं जो आज भी प्रचलित है और जिनको नई जीवन पद्धति भी नष्ट नहीं कर सकती।

परन्तु लोक गाथा की तरह लोक गीत भी चूंकि गायन से सम्बन्धित है, इसकी प्रथम रचना समय पर एक विशेष तर्ज होती है और वह हमेशा जिंदा रहे इसके लिये उसको बार-बार गाकर या अभ्यास द्वारा सुरक्षित रखा जाना चाहिए। हर गीत के साथ यह बात जुड़ी हुई है। गीत के साथ साज की संगत भी होती है। पर लोक गीत में ऐसा आवश्यक नहीं होता फिर भी सुरताल में बांधने से वह अधिक आकर्षक व चिरस्थायी हो जाता है। रिकार्डिंग की सुविधा अब हर लोकगीत की मौलिक धुन को सुरक्षित रखने में सहायक है।

(4) लोकनृत्य : लोक गीत व लोक नृत्य का आपस में गहरा सम्बन्ध है। गीत की स्वरलहरी जब गायक या श्रोता के मन को तंरगित करती है तो नसों में खून का दौर तेज हो जाता है है जिससे शरीर का अंग-अंग फड़कने को तैयार हो उठता है। और यदि शरीर के किन्हीं अंगों यथा हाथ, पांव, सिर व गर्दन आदि को आपने निश्चित गतियां करने के स्वभाव से जोड़ा हो तो वे स्वतः हरकत में आने लगते हैं और आदमी छलांग मार कर धरती की खुली छाती पर हाथ पैरों का घात-प्रतिघात करता हुआ फिरकी की तरह घूमने लगता है और इस प्रकार की प्रक्रियाओं को वह गीत की लय उसके ताल के क्रम से जोड़ता है। गीत के बोलों से जो सम्मोहनकारी स्थिति पैदा होती है उसकी चर्म परिणति नृत्य में होती है।

जो आदमी नाचने लगता है व गीत से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है और कई बार उस गीत के वह स्वयं भी दोहराता है। जैसे गीत में मंद, मध्यम व तीव्र गति होती है वैसे ही नृत्य में भी तीनों स्थितियां रहती हैं। नाचते समय नर्तक का सारा शरीर गतिशील रहता है और शरीर की गति के क्रमिक उभार के साथ मन में भी आनन्दानुभूति तंरगों का रूप ले लेती है।

सदियों के अन्तराल में लोगों ने लोक नृत्य के नियम बना लिये हैं। उनका गीतों के साथ तादात्म्य स्थापित कर दिया है और उनके नाम तक रख दिये हैं जैसे गिद्धा, लुडडी, नाटी आदि। इनमें नाटी ही मुख्य रूप में हिमाचल में प्रचलित हैं। नये युग की आवश्यकताओं के अनुरूप इनको लगातार बनाया सवारा जा रहा है।

हिमाचल प्रदेश में नृत्य का सामुहिक स्वरुप ही मुख्य है। एक तो नृत्य देवताओं के साथ बंधा हुआ है दूसरे सुरापान के साथ देवता के नाच में भी आदमी को उन्मादी स्थिति में होना चाहिए और सुरापान से भी नर्तक के ऊपर उन्मादकता का प्रभाव होता है।

(5) लोक-नाटक : लोक जीवन में लोक नाटक का बहुत बड़ा महत्व है परन्तु लोक नाटक की परम्परा हमारे यहां बहुत सीमित हो गई है। पहले भी इसका अधिक प्रचलन रहा हो कुछ नहीं कहा जा सकता परन्तु इतना अवश्य है कि लोक नाटकों की यहां परम्परा रही। स्वांग, बांठड़ा, हरण, शैलू, हरणेयत्तर आदि अनेक नाम स्थान-स्थान पर मिलते हैं। परन्तु आजकल सबसे अधिक प्रचलन रामलीला आदि धार्मिक-सांस्कृतिक नाटकों का हो गया है और स्वांग बांठड़े आदि तो मात्र स्मृति में ही शेष हैं। कभी-कभी ऐतिहासिक व अन्य धार्मिक नाटक भी मंचित किये जाते हैं। परन्तु लोक-नाटक की इस विधा को विस्मृत ही किया जा रहा है। वास्तव में हमारे यहां लोक नाटक हास्य-नाटक के रूप में ही प्रचलित था जिसमें व्यंग्य की भी प्रधानता रहती थी। पचास-साठ वर्ष या इससे भी अधिक समय पहले जब मनोरंजन के सिनेमा, रेडियो, ट्रांजिस्टर, रामलीला जैसे साधन नहीं थे तो मेलों में, शादी-ब्याहों में या फुर्सत के दिनों में बिना किसी नियमित मंच के वस्त्राभूषणों व नाटक के लिए अपेक्षित साधनों के राजाओं, दरबारियों, वीरों, पुजारियों, औरतों, पड़ोसियों व परदेसियों की नकलें उतारी जाती थीं। सम्वाद के नाम पर आवाज को बनावटी करके ऊंचे स्वर में बोला जाता था। अभिनय के नाम पर चेहरे व अन्य अंगों को भी अप्राकृतिक रूप में संचालित किया जाता था। किसी पशु, पक्षी या अद्भुत जन्तु का चेहरा बांध कर नाच भी दिखाया जाता था और सम्वाद भी बोले जाते थे।

आज चूंकि जीवन की परिस्थितियों बदल गई हैं या बदल रही है. स्वांग, बांठड़ों के पुराने पात्र रहे नहीं हैं व्यवस्था के नये प्रतीकों की निंदा का नाटकीकरण नहीं किया जा रहा है। साथ ही मनोरंजन के बहुत विकल्प सामने आ गये हैं। अत: प्रदेश की पुरानी संस्कृति के वास्तविक स्वरूपों की रक्षा के लिए किसी धैर्यवान एजेंसी की बड़ी आवश्यकता है।

फिर सबसे बड़ा प्रश्न व्यावसायिकता का है। धार्मिक सांस्कृतिक नाटक व भजन मंडलियों को तो श्रद्धालुओं से पैसा मिल जाता है। फिल्मों का प्रदर्शन सरकार स्वयं पैसे खर्च कर-कर देती हैं या कहीं भी पैसा देकर उन्हें देखा जा सकता है। परन्तु स्वांग या बांठड़ों के कलाकारों को ऐसी कोई सुविधा प्राप्त नहीं होती क्योंकि इनके प्रदर्शनकर्त्ताओं की उपस्थिति - अस्तित्व स्वैच्छिक व सीमित है।

(6) लोक कला : यह भी लोक जीवन से प्रसूत विधा है। ब्राह्मणों द्वारा यन्त्र बनाना, हस्तलिखित पोथियों पर चित्र उतारना पनिहारों व अन्य स्थानों पर देव वैताल, पितरों की प्रतीकात्मक मूर्तियाँ बनाना, पत्थर की देव मूर्तियाँ बनाना, धातुओं के देवी-देवताओं के मोहरे ढालना, रूमालों व कपड़ों पर कढ़ाई, कपड़ों पर छपाई व नाना प्रकार के हस्त कौशल से तैयार किए जाने वाले डिज इन कपड़ों की गोटा-किनारी, जूतों पर तिल्ले का काम, लकड़ी के दरवाजों अलमारियों व सन्दूकों आदि पर खुदाई, गहनों की विशेषरूपाकार में ढलाई, गुड़ियों का बनाया जाता, मिट्टी व लकड़ी के खिलौने शरीर के अंगों पर मोर आदि बनाना तथा महिलाओं द्वारा घर की दीवारों पर पशु-पक्षी उतारना व कोहरा बनाना आदि अनेकों ऐसी चीजें हैं जिनमें लोक कला के जोहर देखे जा सकते हैं। इन विधा के साथ चूंकि मात्र मनोरंजन या शौक की वस्तुयें नहीं जुड़ी हैं प्रत्युत जीवनोपयोगी वस्तुयें, सांस्कृतिक आवश्यकता की व सजावट श्रृंगार की वस्तुयें भी हैं अतः इस कला का क्षेत्र बहुत

विविधतापूर्ण है, परन्तु इस कला का क्षेत्र भी बराबर सिकुड़ रहा है। अब मात्र ऐसी कलात्मक वस्तुयें बनाई जाती हैं जिनकी मण्डियों में मांग हो। इन वस्तुओं का काल सामंतकाल था। अब पूंजीवाद का युग है जिसमें शौक पूरा करने के साधनों की अनन्त संख्या है जिनका निर्माण मशीनों द्वारा होता है। हस्त-निर्मित वस्तुयें मूल्य के तौर पर मशीन-निर्मित वस्तुओं का मुकाबला नहीं कर सकती। अत: लोक कला के अनेकों रूपों की समाप्ति हो रही है। इस लोककला की रक्षा का एक ही उपाय है वह है सरकारी संरक्षण व इसके सब कला रूपों को सिखाने का एक विशाल शिक्षालय।

(7) कहावतें व पहेलियाँ : लोक जीवन में कहावतों का भी अपना विशिष्ट स्थान है और पहेलियाँ मनोरंजन व हाजर जवाबी की जांच परख का अच्छा माध्यम रही हैं।

पहले हम कहावतों की चर्चा करते हैं। लोक में अथवा समाज में ठीक ढंग से काम करने, निरापद ढंग से काम करने, काम व समझ के अनुभव सार्वजनिक बनाने की उत्कट इच्छा रही लगती है। इसी से कहावत का जन्म हुआ लगता है। अध्ययन व सर्वेक्षण करने से तो ऐसा पता चलता है कि लोकभाषा व बोली का एक भी वाक्य ऐसा नहीं जो कहावत न माना जाय हर बात जो कही जाए उसका कुछ न कुछ मंतव्य होता चाहिए अर्थात् वह शिक्षाप्रद भी हो सकती है, सलाह देने वाली भी हो सकती किसी खतरे से खबरदार करने वाली भी हो सकती है अत: लोक मंगल या कल्याण की भावना से ओत-प्रोत होती है। कहावत निंदापरक वक्रोक्ति या व्यंग्योक्ति के रूप में भी हो सकती है। कहावत का एक खण्ड मुहावरा भी होता है। वैसे मुहावरा भी अर्थ-विशेष की पूरी सूचना देता है परन्तु उसका वाक्य में प्रयोग किया जाकर ही मंतव्य पूरा हो सकता है लोक जीवन का रूप बदलते जाने के कारण कहावतों का रिवाज भी घटता जा रहा है।

पहेलियाँ : लोक जीवन की यह विधा बड़ी दिलचस्प है आजकल भी सर्दियों के दिनों में जब बच्चे कहीं किसी बड़े-बुजुर्ग से कथा सुनाने का आग्रह करते हैं। तो पहले कह इन की उत्सुकता जगाने के लिये उनके मन की स्थिति को उत्सुक श्रोता की स्थिति बनाने के लिये कुछ पहेलियां पेश करते हैं और बच्चे अपनी समझ का पूरा उपयोग करके कई उतर देकर हल प्रस्तुत करते हैं। पहेलियां प्रश्न के रुप में होती हैं। तुक बन्दी के ढंग से एक बात कही जाती है जो दो तीन या चार वाक्यों में हो सकती है। उस प्रश्न के उत्तर में किसी वस्तु विशेष का नाम होता है।

इस प्रकार लोक साहित्य के ये अंग-प्रत्यंग समय की मार से विभाजित या विखंडित हो रहे हैं। परन्तु भाषा-विभाग आदि संस्थान इन कलाओं की सुरक्षा के लिये यथा सम्भव प्रयास कर रहे हैं।

191/10 थनेहड़ा मुहल्ला
मण्डी।

हिमाचल संस्कृति में मार्कण्डेय

—अमर देव आंगिरस

हिमाचली संस्कृति में ऋषि मुनियों एवं साधकों की तपस्या की प्रधानता रही है। सृष्टि के प्रथम प्रभात में मनु जी का अवतरण देवभूमि मनाली में हुआ था। किन्नर कैलाश एवं मणिमहेश देवादिदेव शिव के लीलास्थल हैं तो महर्षि व्यास और ऋषि यमदग्नि के स्मृति चिन्ह हिमाचली नगरों अथवा नदियों के अभिधान के रूप में सर्व विदित हैं। महर्षि मार्कण्डेय जिन्हें महामुनि के रूप में मान्यता मिली। हिमाचल के अनेक क्षेत्रों में देवता के रुप में पूजे जाते हैं। अन्य देवताओं की तरह मार्कण्डेय के लोकोत्सव और देव स्थान सारे प्रदेश में वर्तमान हैं। लोक मान्यताओं के अनुसार पूर्वी हिमालय के बद्रीनाथ—केदारनाथ की पर्वत श्रृंखलाओं में मार्कंण्डेय ने अमरत्व के लिए साधनाएं की थी। भारतीय इतिहास-दर्शन के अमुसार मनु से पूर्व देव युग में जल प्रलय हुई थी जिसमें मार्कण्डेय जी ही जीवित बच सके थे। इसी प्रकार स्वायंभुव मनु के समय भी जल प्रलय हुई थी जिसमें हिमालय की उपत्यका में अपनी नाव के साथ सृष्टि रचना के लिए ये जीवित बचे थे।

मार्कण्डय का जीवन वृत भारतीय पौराणिक परम्परा के अन्तर्गत अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। इनसे सम्बन्धित 'मार्कण्डेय पुराण'' इनकी अमर रचना है। इस पुराण के अन्तर्गत इनका ''दुर्गा कवच'' भारतीय पूजा अर्चा में एक दिव्य स्तुति एवं अभिचार के रूप में आज भी प्रचलित है। देवी भागवत पुराण इनकी अन्य महान रचना है। इनके रचित ''महामृत्यंजयजप'' के दिव्य श्लोकों को भारतीय समाज इहलौकिक सुखों तथा अमरत्व की कामना से युगों से अखण्ड पाठ और अनुस्ठान के रुप में पठित करता आ रहा है। ''मह मृत्यंजय जप'' अर्थात 'मृत्यु को जीतने का संकल्प' अथवा दैहिक-दैविक आपदाओं के शमन का मन्त्र।

इस अमर मुनि के देव स्थान कुल्लू में रोट नोर-निर्मण्ड, तवाह, गाड़ (सराज) रितवा-बंजार मण्डी में डीडर तथा बिलासपुर में माकड़ी नामक स्थानों में वर्तमान हैं। बिलासपुर क्षेत्र का माकड़ी नामक स्थान तो मार्कंण्डेय के उपर ही सुविख्यात है। मार्कंण्डेय के नाम पर यह प्राचीन काल से एक तीर्थ ही बन गया है।

मार्कण्डेय का जीवन वृत मार्कण्डेय पुराण, भागवत पुराण, स्कन्द पुराण, अग्नि पुराण, शिव पुराण आदि ग्रंथों में विशुद्ध रुप से मिलता है। मुनि मार्कण्डेय ब्रह्मा के मानस पुत्र, मृगु के पौत्र तथा ऋषि मृकण्ड के पुत्र थे। भागवत पुराण के अनुसार जब बड़ी आयु तक मृकण्ड और मरुद्वती के कोई सन्ताम न हुई तो मृकण्ड ने हिमालय के उत्तर में पुष्पभद्रा नदी के किनारे शिव की घोर तपस्या की।

इनकी तपस्या से भोलेनाथ बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें बरदान मांगने को कहा। ऋषि ने पुत्र की कामना प्रकट की। शिव ने आशीर्वाद दिया—"महर्षि मृकण्ड, तुम्हें शीघ्र पुत्र प्राप्त होगा।" किन्तु यह पुत्र केवल बारह वर्ष की आयु का होगा। यह कहकर शिव अन्तर्धान हो गये। शिव के वरदान से मृकण्ड के घर एक दिव्य बालक उत्पन्न हुआ जिसका नाम रखा गया मार्कण्डेय।

यज्ञोपवीत संस्कार तक पिता के निकट वेदपाठ के अधिकारी होकर मार्कण्डेय गुरुकुल गये। वहां ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये उन्होंने चारों वेद पढ़े। मार्कण्डेय ने शान्त भाव से आजन्म ब्रह्मचारी रहने के विचार से कठोर व्रत तथा तपस्या प्रारम्भ की। जटा धारण किये, वल्कल पहने, दण्ड कमण्डलु लिये, जनेऊ धारण किये नैस्ठिक ब्रह्मचारी मार्कण्डे प्रातः एवं सायं अग्नि, सूर्य गुरू, और आत्मा में हरि की पूजा-अराधना करने लगे। इन्होंने हरि की तपस्या में कई मन्वन्तर बिता दिये। अराधना के प्रभाव से यमराज एवं उसके दूत 12 वर्ष की आयु होने पर मार्कण्डेय को साथ नहीं ले जा सके। 12 वर्ष की आयु मन्वन्तरों में बदल गई। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के कारण इन्होंने मुनि का पद प्राप्त किया। इन्होंने मृत्यु को जीत लिया। भगवान के ध्यान में तल्लीन मार्कण्डेय ने छः मन्वन्तर बिता दिये। सातवें स्वायंभुव मन्वन्तर में मार्कण्डेय जी का साधना का हाल जानकर इन्द्र को यह शंका हुई कि कहीं यह ऋषि मेरे पद को न छीन ले। तब इन्द्र ने मार्कण्डेय जी की तपस्या में विघ्न डालने के लिए उनके पास गन्धर्व, अप्सराएं वसन्त एवं रजोगुण से उत्पन्न लोभ और मद आदि अपने आज्ञाकारी अनुचरों को भेजा।

पुष्प भद्रा के तट पर मार्कण्डेय तपस्यारत थे। मुनि का आश्रम बहुत रमणीय और पवित्र था। घोर एकान्त में प्रकृति की संगीतमयी ध्वनियां ही सुनाई देती थीं। हिमालय के इस भाग में छोटे-2 शिखरों की सुन्दरता प्रातः काल एवं सायंकाल को देवलोक का दृश्य उत्पन्न करती थीं। सघन वनस्थली में वृक्षों पर सात्विक पक्षी बैठे मधुर कुहुक से वातावरण में उल्लास भरते थे। पवित्र सरोवर निर्मल जल से सुशोभित थे। ऐसे में शीतल फुहारें उड़ाता, फूलों की सुवास फैलाता मलयपवन काम की इच्छा जगाने के लिए मुनि के आश्रम में डोलने लगा। वसन्त ने वृक्षों को फलों और फूलों से सुशोभित कर दिया। पुष्पगुच्छों से लदी लताएं और वृक्ष कामदेव के वश होकर परस्पर लिपटने लगे। रात होते ही पूर्व दिशा में पूर्ण चन्द्रमा निकल आया। गन्धर्व गाने बजाने लगे। स्वर्ग की अप्सराओं का स्वामी कामदेव फूलों के बाण मारने के लिए प्रस्तुत हुआ। गेंद उछालती हुई पुन्जिक स्थली नाम की अप्सरा मुनि के आगे आई। वह परम सुन्दरी अर्द्धनग्न सी आश्रम में नृत्य करने लगी। गन्धर्व-गण वीणा, मृदंग, प्रणव आदि बाजे बजाकर गाने लगे। चारों ओर पुष्प वर्षा होने लगी। पुंडिक अप्सरा ने पुकारा—"ओ मेरे प्राणों के स्वामी, बरसों से मैं तुम्हारी खोज में थी। तुम्हें स्वर्ग धरा तथा इन्द्रपुरी में ढूंढा पर तुम न मिले। तुम्हारे अनुराग ने मुझे इन्द्रपुरी से यहां आने पर विवश किया। मुझे अपना लो।"

मार्कण्डेय टस से मस न हुए। उनके हृदय पटल पर एक ही विराट रूप की छाया अंकित थी। उनके मुंह से निकला—

"ॐ रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं, नीलकण्ठं, उमापतिम्
नमामि शिरसा देवम् किं नो मृत्युः करिष्यति।

ॐ शंभो विभो रुद्रं स्वयम्भो जय शंकर:
जयेश्वर जयेशान जय सर्वं कामद:
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्यु: करिष्यति ।

मुनि मार्कंण्डेय के असह्य तेज से इन्द्र के अनुचर तथा अप्सराएं अपने आप ही जलने लगे। वे अपना सा मुंह लेकर भाग खड़े हुए। मार्कण्डेय परीक्षा में खरे उतरे थे। दिव्य स्तुति से प्रसन्न होकर कुछ ही क्षणों में मार्कण्डेय के सम्मुख प्रकट हुए और मार्कंण्डेय से बोले—महामुनि तुम्हारे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य को देखकर मैं प्रसन्न हूं। तुमने अमरता प्राप्त की है फिर भी मनचाह वर मुझसे मांगो।" मार्कंण्डेय बोले—"प्रभु आपके दर्शन से बढ़कर और क्या है जो मांगू ? फिर भी भगवान मैं आपकी अद्भुत माया को एक बार देखना चाहता हूं।"

'तथास्तु' कहकर नारायण अन्तर्धान हो गये।

हिमालय के पश्चिमी अंचल में मार्कण्डेय पुष्पभद्रा नदी के किनारे बैठकर महामृत्युंजय मंत्र का पाठ करने लगे। एक दिन अचानक बड़े वेग से प्रचण्ड आंधी चलने लगी। उस आंधी के थपेड़ों से महाभयानक रव होने लगा। चारों और बादल घिर आये। बिजलियां कड़कने लगी और मूसलाधार वर्षा होने लगी। कुछ ही क्षणों में घोर अन्धकार में सृष्टि डूबने लगी। उस प्रलय सागर में मार्कण्डेय डूबने लगे। बहते बहते एक समय मुनि ने एक जगह छोटा सा टापू और उसमें एक छोटा सा फूला फला बरगद का वृक्ष देखा। उस वृक्ष की शाखा में पत्तों पर सोये पन्ने के समान चमकते श्याम वर्ण एक परम सुन्दर बालक को देखकर मार्कंण्डेय बड़े विस्मित हुये। वह दिव्य बालक पांव का अंगूठा चूस रहा था और मार्कंण्डेय की ओर देख रहा था। बालक के साथ अपने जीवित रहने का मुनि को बड़ा आश्चर्य था। यह अद्भुत माया नारायण ने ही तो रची थी। कुछ ही क्षणों में मुनि ने उस बालक को अपनी बाहों में लेने का प्रयत्न किया तो ऊन्हें लगा कि वे एकाएक बालक के पेट में समाते जा रहे हैं। एक अद्भुत दृश्य सामने था। विराट पुरुष। समस्त आकाश तारागण, पर्वत सागर दिशाएं, धरती समस्त चराचर इसमें समाया हुआ। सृष्टि का बीज रुप यह बालक। मार्कण्डेय के मुंह से निकला—"प्रभु मुझे और कुछ न चाहिए।"

तभी आकाशवाणी हुई—"मार्कंण्डेय, तुम्हारी घोर उपासना तथा दृढ़ संकल्प के प्रतिफल में मैंने यह अद्भुत माया दिखाई है। यही ब्रह्मज्ञान है जो मैं हूं वही तुम हो, मात्र वाह्य आवरण रुपान्तर है। तुम अमरता के साथ मेरी अचल अटल भक्ति प्राप्त करोगे। तुम आने वाले कल्पों में भी जीवित रहोगे तथा पुराण रचना करोगे।

महादेव शिव का यह वरदानी पुत्र' जो भारतीय जनमानस में वैवस्वत मनु की तरह महाप्रलय के पश्चात जीवित बच सका था · आज भी लोक विश्वासों में अजर-अमर माना जाता है जिसकी आत्मा हिमालयी क्षेत्रों में विचरण करती हैं। ऋषि मृकण्ड की तपस्थली हिमालय की उपत्यका जहां पुत्र कामना से इन्होंने तपस्या को थी बिलासपुर क्षेत्र की पावन उपत्यका मारकण्ड ,, इस पौराणिक गाथा के प्रतीक स्थल के रुप में आज भी वर्तमान है। मार्कण्डेय ने भी यहां तपस्याएं की थीं- ऐसी लोक धारणा है।

'मार्कण्ड' में वर्तमान मार्कण्डेय मन्दिर के पवित्र जल प्रपात पर प्रतिवर्ष वैशाखी के दिन हिमाचल के निवासी पुण्य स्नान के लिए आते हैं। नर नारायण के प्रतिरूप विष्णु अवतार राम सीता का मन्दिर तथा शिव का मन्दिर मुनि के साथ संयुक्त है। पास ही पवित्र व्यास गुफा है। कहते हैं महर्षि व्यास बिलासपुर से गुफा के मार्ग से यहां तपस्याएं के लिए आते थे। इस प्रकार यह ऋषि व्यास की पुण्य-स्थली भी है।

मार्कण्डेय के छोटे-छोटे पवित्र जलाशय वटिकृष्ण इन्द्रदमन सरोवर, रोहणी सरोवर इन सभी में "मार्कण्ड मेले" के अवसर पर स्नान करना पुण्य समझा जाता है। यह स्थान ज्येष्ठ तीर्थ माना जाता है। पुत्र कामना से लोग दूर-दूर से वहां मनौतियों के लिए आते हैं। कुंआरी कन्याओं को स्नान के लिए यह प्रसिद्ध तीर्थ है। पहाड़ी अंचल में लोकोक्ति प्रचलित है—

"मार्कंण्ड वटिकृष्णे रोहण्यांच महोदधिः
इन्द्र दमने च स्नानेन पुनर्जन्म न विधते।

मार्कण्डेय के स्नानकुण्डों में स्नान करने से मानव पुनर्जन्म नहीं लेता। वह अमरत्व प्राप्त कर लेता।

मार्कण्डेय में वैशाख संक्रान्ति को होने वाला मेला बिलासपुर क्षेत्र तथा प्रदेश के लोगों की आस्था की धुरी बना हुआ है। इसके प्रति स्त्री पुरुषों तथा युवकों में एक ललक पाई जाती है। वर्ष की प्रतीक्षा के वाद पर्वतबासी दूर-दूर की पहाड़ियों से लोकगीतों के आदान-प्रदान में इस ओर चल पड़ते हैं। लोकगीतों में मार्कण्डेय कुछ इस प्रकार घुलमिल गया है :—

"न्हाई लैणा अच्छरिये न्हाई लैणा वे
तत्तापाणी मार्कण्डेय न्हाई लैणा वे—" और
"हरी डालिया टे बास रखणी
मारकण्ड न्हाया करिए
एवे वाड़िया री आस बोनो राखणी—"

मार्कण्डेय हिमालयी संस्कृति में इतना घुलमिल गया है कि इसके नाम से किसी सुखद मिलन की कल्पना तथा बुराइयों के निवारण की भावना की प्रतीति होती है। मार्कण्डेय श्रद्धालुओं का पवित्र स्थल भी रहा है और जन साधारण का आकर्षक मिलन स्थल भी। वर्ष भर की मान मनौतियों के पश्चात जन साधारण यहाँ कामनाओं की पूर्ति के लिए एकत्रित होते है। आज आवागमन की सुविधा से मार्कण्डेय पहुंचना बहुत सरल हो गया है। बिलासपुर-शिमला मुख्य मार्ग के ब्रह्मपुखर नामक स्थान से 3 मील की दूरी पर स्थित मार्कण्डेय सैलानियों के अमोद प्रमोद के लिए भी एक आकर्षक स्थल है।

उच्च पाठशाला
दाड़लाघाट
तहसील अर्की, जिला सोलन,
हि० प्र० 171102

हिमाचली में आ की ध्वनि और वर्तनी

—श्यामलाल

आकारं परमाश्चर्यं शंखज्योतिर्मयं प्रिये ।
ब्रह्माविष्णुमयं वर्णं तथा रुद्रमयं प्रिये ।
पंचप्राणमयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली ॥
(कामधेनुतन्त्र—द्वितीय पटल)

प्रस्तुति

तन्त्रसाहित्य में वर्णमहिमा के अन्तर्गत आ का स्वरूप परम आश्चर्य वाला दर्शाया गया है। आ के रूप में सृष्टि के कर्त्ता धर्त्ता और संहर्ता ब्रह्मा विष्णु तथा महादेव की लीला का वर्णन है। संस्कृत शब्द-कोश कर्त्ता सौभरि ने अपनी कृति एकार्थनाममाला में आ के बारह अर्थ दिये हैं :—

आ: स्वयम्भूरिभो वाजी खेद, शंकरवासवो ।
पारिजातः समः प्राज्ञो निवासश्चणकः सुतः ॥

आ के अर्थ हैं :—ब्रह्मा, हाथी, घोड़ा, खेद, शंकर, इन्द्र, पारिजात तरु, समान, विद्वान, निवास, चना, और पुत्र ।

अन्य कई भाषाओं में प्रथम अभिव्यक्ति के अनुरुप हिमाचली में भी यदि स्वागत के लिए शब्द सहसा उपस्थित न हो तो मधुर तान में आ का व्यवहार किया जाता है। स्वरलहरी हो या बारहखड़ी हो सर्वप्रथम अ अ आ आ का अभ्यास मन्द तथा द्रुत उच्चारण में कराया जाता है। ललित संगीत में यदि कोई तान सीखनी हो तो आ आ की रट लगायी जाती है। शास्त्रीय संगीत में भी आ आ से आरम्भ कर सा रे गा मा पा धा पा मा के स्वर में आ से ही मुखप्रदर्शन होता है। यदि प्रशंसा में कोई शब्द समयानुकूल न मिले तो आ की लय मधुरिमा से गुणगान किया जाता है। किसी अटपटी बात मन को न भाय तो हाथ के झटके से आ की तान से ही प्रसंग भंग किया जाता है। चटाका लगाकर चटपटे पदार्थ का रसास्वाद आ हा की ध्वनि से आ को हा तक मानों वर्णमाला का संहार किया जाता है। अमरकोश में नानार्त वर्ग में आ की ध्वनि को लम्बा खींचने का अभिप्रा इस प्रकार दर्शाया गया है :—

आ प्रगृह्यः स्मृतौ वाक्येऽप्यास्तु स्यात् कोपपीड़योः ।
आ—कहते कहते सिर खुजलाया जाता है और भूले बिसरे का स्मरण किया जाता है।
आ आ—कह कर ही समय पूरा किया जाता है जब बोलते बोलते कुछ भूल भुलैया हो जाय।

आ आ करो—यह निर्देश चिकित्सक का होता है जब दन्तपीड़ा से व्याकुल व्यक्ति मुंह दबाये औषधि मांगता है। क्रोध में तो शब्दशैली अथवा वाक्यशैली जड़ ही नही पकड़ती है। आ आ के आवेश में ही आक्रमण किया जाता है। मानव तो क्या दानव भी क्रोध में आ का ही सहारा लेता प्रतीत होता है। भगवती चण्डी की शक्ति के आगे महिषासुर जब हक्काबक्का हो गया तो वह भी अपने दलबल के संग आ कहता हुआ ही भागा था। नवरात्रों में दुर्गासप्तशती का पाठ करते समय जब गुरू जी दूसरे अध्याय के ३६वें श्लोक को आरम्भ करते हैं तो मानों आ की तान में गर्ज उठते हैं :—

आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः।
अभ्यधावत तं शब्द मशेषैरसुरैर्वृतः ॥

क्रोध में ही नहीं सन्तोष में भी माता अपने बच्चे को दूध पिलाते समय आ कहकर पुचकारती हुई मुंह खोलने की प्रेरणा देती है।

आ - का संकेत तो पशु पक्षी भी समझते है। आ आ सुन कर वे झट उड़ आते हैं और प्रीति से घास, ग्रास, रोटी, पानी, चोग चुगते हैं।

आ— का व्यापक अर्थ है। इसमें आदि से अन्त का समावेश हो जाता है। आजीवन का अर्थ जीवनपर्यन्त ओर आमरण तो ऐसा भयंकर व्रत है व्रत है कि कोई माँग पूरी न करे और आ कह कर रसपान न कराये तो अपने आप आ आ की आंहों से करवट बदल कर आवागमन के चक्र से मानो छूटना पड़ता है। इस प्रकार आव्रहन में चराचर व्रहमाण्ड लीन है। आबालवृह्द में बालक से लेकर बूढ़े तक सभी का स्वागत है।

आ की महिमा गान जितना किया जाय उतना थोड़ा है। हिमाहली बोलियों में आ वर्ण का व्यवहार बहुविध रुप में है। अक्षर को कहीं अक्खर' कहीं आक्खर' कहीं ओक्खर और किन्नौरी में आखोर सुना जाता है। इन सब में आ के विविध रुप ध्वनि में श्रुतिगम्य हैं।

1. सन्दर्भ

1.1. आदी स्थिति

आ का व्यवहार विभिन्न श्रेणियों में शब्द की आदि स्थिति में इस प्रकार है:-

(1) फल :—

आम्ला 'आमला', आक्खा 'कांटेदार शाखा का फल', आड़ा, आरू, आल्लूबखारा तथा कुलुई और सिरमौरी में आम्ब 'आम'

(2) वृक्ष :—

आम्ले 'आमला वृक्ष', आर्नं 'आडू का वृक्ष'

(3) व्यंजन :—

आद्रा 'अदरक', आसरा 'रायता', आल्‍लू

(4) उपकरण :—
आर 'जूते का सूआ', आरा, आरी, आटी, आड़ी, आगला

(5) पूजा :—
आचमन, आचमी 'आचमनी', आरती, आधार, आधारी, आसण, आस्तक 'आस्तिक'

(6) अंग :—
आकँ, आरवंण (कुलुई) 'कुहनी', आड्डी 'एड़ी', आन्द्र 'अंतड़ी'

(7) पक्षी :—
आड़ी 'बत्तख'

(8) आवास :—
आल्हा, आल्हणा 'घोंसला', आसरा 'आश्रय' आसणी, आसणा

(9) स्थान :—
आर्यावर्त, आनन्दपुर, आलमपुर, आसापुरी, आबू

(10) व्यक्तिगत :—
आंगिरस आत्माराम, आतमाराम, आत्तो, आगा, आभा, आस्था, आसू, आसा, आराधना, आसीस, आर्य आलमसिंह

(11) प्राकृतिक :—
आल तालाब', आह्‌ण 'ओला', आरपार, आओहोंआ 'आबोहवा'

(12) सम्बन्ध :—
आम्मा, 'अम्मा', आख साख, 'सम्बन्धी', आंटी 'चाची, मासी (विदेशी)'

(13) आत्मसम्बन्धी :—
आत्मा, आत्मसंजम, आतमविद्या, आत्महत्या, आत्महत्या, आत्मनास, आपोआप आपाधाप्पा आपबीत्ती,

(14) आयुर्वेद :—
आयु, आधव्याध 'आधिव्याधि', आं 'आमाशय रोग'

(15) विदेशी :—
आमदण, आमतौर, आमरस्ता, आखर, 'आखिर', आइना, आर्जी, आह्‌ला 'बढिया' आस्ते 'धीरे', आलीसान 'आलीशान', आर्मी, आडर, आफस 'आफिस'

(16) क्रियापद :—

आ, आजणा, आशणा, आकडणा

(17) नासिक्य, सानुस्वार :—

आं, आं, आं वा 'रुदन क्रन्दन', आं खां, आं जी, आं जां, आंचू 'आंसू'

(18) प्रत्यय रचना :—

आला गोहरे आला, ग्रांएं आला, चम्बे आला, घराआला, टोन्ना आली, बाग्गाँ आली, बारगाँ आला, सेट्टी आली, मिंजो तिज्जो आला मेरे तेरे वाला'

1.2. मध्य स्थिति

शब्द की मध्य स्थिति में उ का परवर्ती आ मन्द उच्चारण में स्पष्ट सुनाई देता है। इ ई ए, ऐ का परवर्ती आ य श्रुतिगम्य है। टिककर बोलने में आ का उच्चारण स्पष्ट है, यथा गिआन, सिआणा, सिआई, गेआ, लेआ, दैआ आदि मन्द उचारण में ग्यान, स्याणा स्याणा, स्याई, ग्या, ल्या, दैया, दया आदि द्रुत उच्चारण में उ का परवर्ती आ मन्द उच्चारण में स्पष्ट है :—

सुआस 'श्वास', दुआस 'उदास', पुआध 'उपाधि', कुआल 'घाटी का प्रस्तरमार्ग'. सुआल 'शैवाल', जुआन 'युवा', जुआणें 'अजवाइन'

व्यक्तिनाम :—

पुलिंग—दुआन्ना, सुआरू, साऊं, माऊं, झाऊं, साधू, पहाड़ू।
स्त्रीलिंग—सुआरो, श्वांस, कास्तां, सारो, बाघ्दू, भातां, कलासां।
क्रिया रूप—सुआण, रुआण, ध्लाह, बर्ताण तपाण, वटाण।
अन्य—'बयार', बक्षाण 'बछौना', बछाट, बकार।

1.3 अन्त स्थिति :

शब्द की अन्त स्थिति में आ के उदाहरण अनेक हैं।
आकारान्त शब्द हैं—आडा बाणा, आस्सा पास्सा, ताब्बा टोल्ता, छोंआ 'छाया', तोआ 'तवा', दोआ 'दावा' डोआ 'काठक का कलछा'।

व्यक्ति नाम—

पुलिंग—राम्मा, दीना, गीका, पांगा, फांगा, फांचा, पांजा, छांगा, फीन्ना, काक्का, नस्था, दास्सा, जामा।

स्त्रीलिंग—रमा, मीना, बीणा, स्यामा, आसा, तारा, निसा, माया

विशेषण—चिट्टा, प्यूला, 'पीला' लील्ला 'नीला', कोरा, गोरा, होला, पुट्ठा, खरा, माड़ा, खब्बा, सज्जा, ग्रिट्ठा, गीठा, 'नाटा' टोणा, जम्बा, जल्हा, जप्फा।

सम्बन्ध—साखला, चाच्चा, माम्मा, नान्ना, बाब्बा, अब्बा, अम्मा, माता, साला, भणोआ

संख्या—इक्का, दुक्का, चौक्का, कूह्रा, दूह्रा, मूह्ली, गर्जना तर्जना—कड़ाक्का, खड़क्का, गड़ाक्का, चटाक्का, चमाक्का, छलाक्का, ढलाक्का, तड़ाक्का, दड़ाक्का, दबाक्का, फड़ाक्का, मकाक्का, फड़ाक्का, भलाक्का, लसाक्का, सटाक्का,।

विधि आदेश—

ग्लोआ 'बात करो', ग्लुआ 'बात कराओ', ल्योआ 'लाओ' ल्युआ 'लाने दो' पोआ 'पड़ो' सोआ 'सो जाओ', रोआ 'रोलो', बर्तोआ 'वर्ताव करो', खड़ोओ 'खड़े हो जाओ'।

2. ध्वनि स्वार—

उच्चारण में आ शिथिल, निम्न, अवर्तुलित मध्य स्वर है आ के उच्चारण में ओंठ खुल जाते हैं। जीभ निचली दन्तपंक्ति में तनिक हिलकर रुक जाती है। उच्छ्वास में श्वास के साथ आ गम्भीर हो जाता है। इसे होक्का साह् कहा जाता है। निश्वास में अन्दर से बाहर श्वास निकालते समय आ लम्बा हो जाता है इसे लम्मा साह् कहते हैं जो शोक, भय, श्रम, और भ्रम, में भरा जाता है।

दन्त्य व्यंजनों से पूर्व कण्ठ से आ के उच्चारण की प्रक्रिया में जीभ दोनों पंक्तियों के मध्य आ जाती है और आ के उच्चारण में तनिक दीर्घता पायी जाती है, यथा :—

आत्मा, आत्तो, आधब्याध, आद आन्त ओष्ठय व्यंजनों से पूर्व आ का उच्चारण शिथिल हो जाता है क्योंकि ओंठ एकदम बन्द होने की प्रतीक्षा में हो जाते हैं :—

,आमा 'अम्मा', आम्ला आमला', आफस 'आफिस'

र से पूर्व आ का उच्चारण ए की ओर हो जाता है :—

गंगेराम 'गंगाराम' सीतेराम 'सीताराम' बण्डेरा 'बण्हारा'

अपवाद :— भण्डारा, सरकार, दारा, मारा आदि

शब्द की अन्त स्थिति में आ के उच्चारण मन्द पड़ जाता है। आदि और अन्त के आ के उच्चारण की तुलना इन उदाहरणों से स्पष्ट है :—

आच्छा, आड़ा, आसा, आला दुआला, माता

हिमाचली बोलियों में स्थान और वक्ता के भेद के कारण आ के उच्चारण में भेद पाये जाते हैं। आ - कहीं मध्य स्वर न हो कर पश्च स्वर हो जाता है। आ के उच्चारण में जिव्हा का अग्रभाग निचली दन्तपंक्ति में हिल कर दोनो दन्तपंक्तियों के मध्य आ जाता है और ओ के उच्चारण स्थान पर पहुंचता प्रतीत होता है क्योंकि ओंठ गोल नहीं हो पाते हैं। परिणाम में आर पार का उच्चारण ओर पोर और

और पौर में हो जाता है । सिरमौर, कुल्लू तथा शिमला के आस पास यह ध्वनि आ और औ के मध्य सुनाई पड़ती हैं :—

औग, 'आग', औज 'आज', औख सौख 'आख साख'

उच्चारण की विविधता में आ के कई रूप ध्वन्यंकन में मिलेंगे जो वाक् तन्त्रियों की तरंगों में अ ए और ओ के समीप होंगे ? हिमाचली बोलियों के पारखी आश्चर्यमय आ की ध्वनि के श्रवण का आनन्द अनुभव करते हैं और रुपवश विवृत, अर्धविवृत, पश्च, मध्य, शिथिल, मन्द, द्रुत संज्ञा से अंकित कर सकते हैं। भाषा भूगोल में आ का अध्ययन रुचिकर सिद्ध होगा।

3. परिवर्तन :

हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा से लेकर किन्नौर तक आ के विविध रूप है। किन्नौरी में मणि फणि का उच्चारण माणि फाणि है। अज 'बकरा' को आजस कहा जाता है।

संयुक्त अक्षरों में लोप और परिवर्तन हिन्दी में पूर्वाक्षर की दीर्घता में है, यथा :—

संस्कृत—अग्नि, कर्म, हस्त, दन्त, पंच

हिमाचली निम्न भाग—अग्ग, कम्म, हत्थ, दन्द, पंज

उपरिभाग—आग, काम, हाथ, दान्द, पांज

हिन्दी—आग, काम हाथ, दान्त, पांच

अपवाद में प्रस्तर, मक्षी, आदि रूप पथ्थर, मक्खी, हिन्दी के समान न होकर यथापूर्व दीर्घता के साथ पाथर, माखो हैं।

हिन्दी और पंजाबी में अकरान्त संज्ञा और विशेषण के विकारी रूप में नहीं हैं। कांगड़ी में संज्ञा और विश्लेषण के विकारी रूप में और अन्य पहाड़ी बोलियों में आ में है :—

हिन्दी	पंजाबी	कांगड़ी	अन्य पहाड़ी
घर को	घर नूं	घरे जो	घरा जो
वन को	बण जो	बणे दा	बणा दा
फल के लिए	फ़ल लई	फ़ले तांई	फला तौणी
प्राण से	प्राण तो	प्राणे ते	प्राणा सैंते

3.1. आ का परिवर्तन अन्य स्वरों में

आ—अ

आ का परिवर्तन अ में इस प्रकार है :—

आलस्य से अलख, व्याख्यान से बखाण

प्रत्यय संयोग में पानी का स्थान पणहयान्द, साथ की विद्या सबंगी प्रेरणार्थ में जागणा, हारना से हारणा, छाणणा से छणाणा

आ—ई

आ के इ में परिवर्तन वाले रूप दुलर्भ हैं :—

शाल्मलि में सिम्मल्

आ—ई

आ के इ में परीवर्तन के अनेक उदाहरण है :—

आकारान्त पुंलिग के रूप स्त्रीलिंग में ईकारान्त हो जाते हैं :—

पूंलिग—चाच्चा, माम्मा, लाड़ा, गोरा, काला, मिट्ठा, खट्टा

स्त्रीलिंग—चाच्ची, माम्मी, लाड़ी, गोरी, काली, मिट्ठी, खट्टी

क्रियारूप :—

पुंलिग—चल्ला, उट्ठा, हरा, रोआ, देआ, लेआ

स्त्रीलिंग—चल्ली, उट्ठी, हरी, रोई, देई, लेई

अन्य परिवर्तन—गाणा से गीत

आ—उ

प्रेरणार्थक क्रिया में आ का परिवर्तन उ में हो जाता है :—

खा	खुआणा	'खिलाना'
गा	गुआणा	'गवाना'
ला	लुआणा	'लगाना'
पा	पुआणा	'डलवाना'

आ—ऊ

लघु तथा प्रियतातावाचक शब्दों में 'आ के ऊ' में परिवर्तन के अनेक उदाहरण हैं :—

ताऊ, माम्मू, चाच्चू, नानू, दाद्दू, मुन्नू, मुण्डू

गड़बू, थालू, कुतुं, सुथणू, पट्टू

कुत्तू और कट्टा बच्छा से कट्टू बच्छू, गोरू, कालू

आ—ए

संज्ञा तथा विशेषण के विकारी रूपों में आ का परिवर्तन ए में है :—

दीना—दीने जो, दीनें तांईं, दीने ते, दीने च

गोरा—गोरे जो, गोरे तांईं, गोरे ते, गोरे च

आदान प्रदान में ला, दा के रूप ले दे, लेणा, देणा हैं।

आ—ओ

हिमाचल प्रदेश के निम्नभाग में व्यवहृत आ का परिवर्तन उपरिभाग ओ में है।

व्यक्तिनामों में आकारान्त शब्द ओकारान्त हैं :—

सीतो सीता' प्रीतो, रूप्पो, तारो, नारो, राम्मो

सम्बोधन—कालो, घोड़ो, माड़ो, सत्तो!

अन्य परिवर्तन—छो छाया, तो 'ताप', 'स्थाप, थाप'

आ—औ

आ के औ में परिवर्तन के अनेक उदाहरण हैं :—

औणा 'आना', पौणा 'पाना', औहृत 'आहुति', सौण 'श्रावण'

प्रत्यय संयोग—

चार	—	चौथ, चौत्या, चौह्रा, चौक्का
दादा	—	ददौह्रा, ददौहरिये, ददिया ससुर'
नाना	—	नन्हौरा, नन्हौरिये ननिया ससुर'

ओ तथा औ का व्यवहार वक्ता की उच्चारण शैली पर निर्भर है। विकल्प में रूप हैं :—

ओण—औण 'आना', गोण—गौण 'गाना' सोण—सौण 'श्रावण'

कुल्लू, शिमला तथा आसपास के क्षेत्र में तनिक दीर्घ ओ वाले रूप व्यवहृत हैं—जिन्हें औ में लिखा जा रहा है :—

घौड़ा, तारौ, जोशौ 'जैसा', थोडौ 'थोड़ा, काचौ 'कच्चा' काणौ 'काना'

लिंग परिवर्तन में आ के रूप मिलते हैं :—

नर से नार, दल से दाल, कण से काण

भाववाचक :—

चल	चाल	मन	मान
मर	मार	टल	टाल
कट	काट	छण	छाण

4. पुनरुक्ति

आकारादि शब्दों की पुनरुक्ति में दूसरा शब्द प्रायः व्यंजनादि हो जाता है :—

आरी—कारी, आला—दुआला

पुनरुक्ति में सामानार्थक शब्द इस प्रकार हैं :—

आख—साख, 'सम्बन्धी', आस्सा—पास्सा

पुनरुक्ति में विदेशी शब्द :—

आदर—खातर, आसरा—बासरा, बास्सा—दलास्सा

विपरीतार्थक शब्द :—

आस—नरास, आशा निराशा', आगा—पीछा, आर—पार' आमदण—खर्चा

4.1. अनुकरण

द्विरुक्त शब्दों के अन्त में आ का योग हैं :—

तड़तड़ा, गड़गड़ा, पटपटा, खटखटा, दड़दड़ा

5. हकारागम

कुल्लू, चम्बा तथा आसपास के क्षेत्रों में आ से पूर्व ह का आगम मिलता है :—

हान्दर	—	आन्दर	—	अन्दर
हाच्छा	—	आच्छा	—	अच्छा
हाख	—	आख	—	आंख

6. लोप

शब्द की आदि स्थिति में ह, ब, का लोप होने से आ शेष रह जाता है :—

6.1 ह लोप

व्यक्तिविशेष के कोमल उच्चारण में आ से पूर्व ह का लोप हो जाता है :—

आ आ—हा हा, आं जी—हां जी, आए राम—हाय राम !

6.2. ब लोप

—बाल—,—बाह्ल—बल, बास्ते, बारी पर प्रत्यर्या में द्रुत उच्चारण वश आदि स्थिति में ब और ब का लोप हो जाता है और आ शेष रह जाता है ार आ शेष रह जाता है ;—

—आला देणे आला 'देने वाला', मेरे आला 'मेरे वाला', तिथी आता 'उस वाला'

—आला घरे आली घर वाली' तिस आली 'उस वाली', कुस आली 'किस वाली'

आल—आह्ल—अल राज्जे आल 'राजा के पास', मेरे आह्ल 'मेरे पास' तेरे आल 'तेरे अल 'तेरे पास', जिसा अल 'जिस (स्त्री.) के पास'

—आस्ते तारो आस्ते 'तारा के लिए', रिचा आस्ते 'ऋचा के लिए', मिजो आस्ते 'मेरे लिए', कुसा आस्ते 'किस (स्त्रि.) के लिए

—आरी रुक्खे आरी 'वृक्ष की बारी', तिज्जो आरी 'तेरे बारी', तिसा आरी 'उस (स्त्री०) की बारी', कुस आरी 'किस की बारी'

6.3. य लोप

व्यक्ति विशेष के उच्चारण में य का लोप होने से आ शेष आ जाता है:—आद ,याद', आदास्त 'याददाश्त', आदगार 'यादगार' आरा—अरा—यारा।

6.4. आ लोप

प्रायः द्वयक्षरी में दूसरे अक्षर पर बलाघात के कारण आदि स्थिति में आ का लोप हो जाता है:—सीस 'आशीष्', सीर्वाद 'आशीर्वाद', चार 'आचार', धार ,आधार', हाड़ 'आषाढ', सूज 'आश्विन" आसोज', डम्बर 'आडम्बर', लाप 'आलाप'

विदेशी शब्दों के उच्चारण में भी आ लोप की प्रवृत्ति पायी जाती है:—
समान 'आसमान', स्मान्नी 'आसमानी', हलका नीला रंग', सान 'आसान', सान्नी 'आसानी'

6. प्रासंगिक अर्थ

आदि स्थिति में आ का लोप होने से प्रसंगवश अर्थ बोध होता है :—

शब्द	अर्थ
चार्ज	आचार्य, कार्यभार
चार	आचार, अचार, चार
धार	आधार, धारा, पर्वत श्रेणी, प्रवाह, शस्त्र की किनारा
राम	आराम, भगवान् राम
समान	आसमान, बराबर
सान	आसान, शाण पत्थर
कार	आकार, कार्य, रेखा, मोटर कार

6.10. द्व्यर्थक

विदेशी भाषाओं से उधार लिये शब्दों की समान ध्वनि होने से कतिपय शब्दों के दो या अधिक अर्थ हैं :—

आस्ते 'धीरे, वास्ते', आसरा 'आश्रय, रायता', आल्हा 'घोंसला, ताक, उत्तम', दूआ 'दूसरा, (दुआ) प्रार्थना.'

8. स्वर संयोग

आ के साथ अन्य स्वरों के संयोग में उदाहरण इस प्रकार हैं :—

आ—इ साइत 'मुहूर्त साइती, सांइस, साइद 'शायद' बाइदा 'वादा'

आ—ई भाई, ताई, बाई 'बाईस,' जुआई 'जामाता'

आ—उ आउदा 'आया,' गाउदा 'गाया', लाउदा 'लगाया'

आ—ऊ भाऊ 'भ्राता', ताऊ, माऊ 'माता।'

आ—ए भाए माए, जाए, खाए, पाए

आ—ओ पाओ 'पाव', गाओ, दाओ, माओ।

ई—आ त्रिटिआ, कुड़ीआ 'लड़की (विकारी),' तोलीआ 'तौलिया'

उ—आ उआन 'कमरा' तुआर 'उतार, एतवार ,अवतार', सुआर 'सोमवार', करुआ 'करवा'

ऊ—आ बूआ 'फूफी', सूआ, जूआ, दूआ 'दूसरा'

ए—आ देआ 'दीजिए', लेआ 'लीजिए', गेआ 'गया'

ओ—आ खोआ 'खोया', मोआ 'मुआ', तोआ 'तवा', होआ 'हवा'

9. वर्तनी विचार

हिमाचली बोलियों में स्थान तथा वक्ता के उच्चारण के भेद से आ के विविध रूप मिलते हैं। बर्तनी में इनका प्रतिपादन समस्या प्रधान है। एक ओर कांगड़ा तथा निकटवर्ती बोलियों में आ का व्यवहार है और दूसरी ओर सिरमौर, कुल्लू तथा शिमला के आसपास ओ का व्यवहार है। जैसे हम कण्डी क्षेत्र से कुल्लू, किन्नौर की ओर शैलधारा में अग्रसर होते जाते हैं वैसे ही आ का उच्चारण ओ की ओर अग्रसर होता जाता है। मुखमुद्रा ओ के उच्चारण के लिए ओंठों का गोलाकार दर्शाती है। आज, साज, बाज, जटा, अच्छा, बांका का उच्चारण ओज, सोज बोज, जोटो, आच्छो, बांको हो जाता है।

इस प्रकार हिमाचली बोलियों में आ, ओ, औ विकल्प में हैं। त्रिकल्प की रक्षा करनी चाहिए। जिस प्रसंग में जो विकल्प आये उसका निर्देश इस प्रकार होना चाहिए :—

कांगड़ा, चम्बा	कुल्लू	अन्यत्र
अज्ज	औज	आज
अग्गे	औगे	आगे

प्रसंगवश विकल्प अपनाना चाहिए। कांगड़ी, मण्डियाली, बिलासपुरी और चम्बयाली में जहां ओ व्यहहृत हैं वहां आ की वर्तनी होनी चाहिए। अन्य बोलियों में जहां ओ औ व्यवहृत हैं वहां ओ औ की वर्तनी होनी चाहिए जिससे रचना में हाव भाव की सुरक्षा हो। आँचलिक कविता, कथा, नाटक तथा अन्य साहित्य विधा में गतिरोध नहीं होना चाहिए। शिमली शैली में घोड़ी, खारौ, जोटी घोरौट, गोलौ, शौएं 'छाया' का अपना हाव भाव है।

कई शब्दों में आदि स्थिति में आ का उच्चारण नहीं है। अतः वर्तनी में आ का त्याग कर देना चाहिए :—

चर्ज 'आश्चर्य', चारिया 'आचार्य', शीस 'आशीष', सान 'आमान' बाद्दी 'आबादी'

प्रसंगवश जहां अर्थभेद आवश्यक प्रतीत हो वहां कोष्ठ में मूल शब्द दोहराने की अपेक्षा आरम्भ में कोष्ठ में आ का व्यवहार करना चाहिए :—

राम्मा जो (आ) राम्मा कन्ने ल्योणा।

'राम को आराम से लाना।'

जहां आ से पूर्व ह का आगम हो गया है वहां इस विशेषता को भी वर्तनी में स्वीकार कर लेना चाहिए जैसा कि अशोक के धर्म लेखों में एवं के स्थान पर तत्कालीन बोली की शैली में हेवं का प्रयोग है।

हिमाचली में बोले जाने वाले ऐसे रूप वर्तनी में लाने चाहिए :—

हाख 'आंख' हाच्छा—'आच्छा 'अच्छा।'

उपसंहार

मानक भाषा और वर्तनी में जितनी सरलता हो उसे अपनाना चाहिए परन्तु बहुप्रचलित रूप के साथ अल्प प्रचलित रूप को नहीं भूलना चाहिए।

प्रसंग के अनुसार वर्तनी में रूप व्यवहार यथाकथित होना चाहिए। स्वरपरिवर्तन के कारण वर्तनी में भेद हो सकता है, परन्तु प्रकरणवश मूल रूप का बोध और अर्थ का आभास अवश्यम्भावी है। प्रकरणवश ही सोना का अर्थ निद्रालीन होना या सुवर्ण जातरूप होगा।

सुवर्ण, स्वर्ण (संस्कृत), सुवण्ण, सोण्ण (पालि, प्राकृत) सोनु (सिन्धी) सोनु (गुजराती), सोनूं (गढवाली), सोनें (मराठी), सोन (मैथली), सौनो (राजस्थानी), स्वारेन (पैशाची), सन (काश्मीरी), सुन्नो (भद्रवाही) सुनो (कुमाऊंनी), सुन (नेपाली), सुना (ओड़िया), सूनो (सिरमौरी), सोनो (बघाटी), स्यूना (सण्डियाली), सुन्ना सून्ना (अन्य हिमाचली) सोना (हिन्दी, पंजाबी) आदि देशकालवश उच्चारण परम्परा में भेद हैं जिन्हें अमुक अमुक भाषा और वर्तनी में स्वीकार किया गया है। इनके व्यवहार की मात्रा में वक्ता और लेखक स्वतन्त्र हैं।

भाषा सर्वेक्षण के अन्तर्गत ध्वनिचिन्तन में आ ओ औ के उच्चारण वैविध्य का स्वनिक लिप्यंकन ज्ञानवर्धक अवश्य है, परन्तु साहित्य रचना के अन्तर्गत वर्तनी में विविधता लाना भ्रमोत्पादक है। स्वनिक लिप्यंकन में ग्रह, अवग्रह, अंक, बिन्दु, विसर्ग आदि के साथ ध्वन्यात्मक लिपि में अनेक चिन्ह आते हैं जिन्हें मुद्रणकला में लाना कठिन है। घोड़ा के लिए व्यक्ति विशेष का उच्चारण भेद वर्तनी में अंकित करना कठिन है :—

घोड़ा, घोड़ो, घाड़ो, घौड़ा, घोड़ाऊ, घाउड़ा, घाऊंड़ा, गोह्‌ड़ा, ग्होड़ा, गौड़ा, क् औ ड़ा, क्होड़ा आदि रूप विसर्ग, बिन्दु, प्रीत, विसम तीन, असुर बल, तानिम आदि चिन्हों से अमुक अमुक बोली विज्ञान उच्चारण शैली में प्रस्तुत किये जा सकते हैं, परन्तु ऐसी वर्तनी अपनाने से अपने भाव को वर्ण-क्रम में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में उपहास मात्र आ औ कहलाने वाली ध्वनि है।

अनेक रूप भेद भाव के निराकरण से वर्तनी में एकरूपता लाना श्रेयस्कर है। एक रूपता से वर्तनी जनसाधारण की भी रचना जनसाधारण तक लेखन पठन पाठन द्वारा प्रेषित कर अमोद प्रमोद सिद्ध हो सकती हैं।

वि. वि. शोधसंस्थान
पंजाब विश्वविद्यालय, साधु आश्रम
होशियारपुर-146029

सांस्कृतिक पर्व गुग्गा एवं सुबाथु जनप्रद

—नरेन्द्र अरुण

मारु प्रदेश, आधुनिक मारवाड़ प्रसिद्ध गुग्गा गाथा की अमिट आस्था और अटल विश्वास ने हिमाचल प्रदेश के भोले-भाले जनपद को भी प्रभावित किया। हिमाचल प्रदेश को आंचलिक छोरों, सोलन, बिलासपुर, मण्डी एवं कांगड़ा के क्षेत्रों में गुग्गा राणा की गाथा और उन का यश फैला हुआ है। भक्तिकाल का उद्भव ठीक जैसे द्रविड़ (दक्षिण) में हुआ और वह उत्तरी भारत में विकसित हुआ, ठीक ऐसे ही गुग्गा गाथा का उद्भव भले ही राज्यस्थान की वीर भूमि पर हुआ किन्तु उसका बहुमुखी विकास पंजाब और हिमाचल प्रदेश को प्रभावित किए बिना न रह सका।

गुग्गा पीर से सम्बन्धित अनेकों दंत कथाएं, किंवदंतियां एवं जनश्रुतियां प्रचलित हैं। गुग्गा नवमी के पावन पर्व पर गाए जाने वाले लोक गीतों में गुग्गा राणा से सम्बन्धित उपाख्यानों एवं ऐतिहासिक लथ्यों से उपलब्ध जानकारी का ब्यौरा इस प्रकार है :—

विश्वसनीय है कि मारु देश (मरवाड़) में दो बहनें रहती थीं जिनको काच्छल और वाच्छल नाम से जाना जाना जाता था। भाग्य की बिडम्बना कि दोनों ही बहनें निःसंतान थीं। काच्छल और वाच्छल ने विभिन्न देवी देवताओं की अराधना की परन्तु उनकी गोद हरी न हुई। भाग्यवश मारु प्रदेश में गुरू गोरखनाथ जी के पावन चरण कमल पड़े। उनकीं चमत्कारपूर्ण आश्चर्य जनक घटनाओं से दोनों बहनें प्रभावित हुई और उन्होंने संतान की कामना को प्रस्तुत किया। गुरु गोरखनाथ ने वाच्छल को 12 वर्ष तक अपना नाम स्मरण करते हुए सोम वृक्ष की जड़ों का चूर्ण बनाकर दो बार सेवन करने को कहा। वाच्छल ने सोम वृक्षों की जड़ों का चूर्ण बनाया। चूर्ण के सेवन के फलस्वरुप उनकी कोख से गुग्गा राणा का जन्म हुआ। कहते हैं कि शिला पर से चूर्ण का कुछ भाग वाछल की सहेली ब्राह्मणी तथा दो हरिजन भंगिन तथा चमारिन स्त्रियों ने भी प्रयोग किया। फ़लस्वरुप ब्राह्मणी ने नरसिंह भंगिन ने मजनूं तथा चमारिन ने रतनु को जन्म दिया। प्रिला को भाग्यवश वाच्छल की घोड़ी भी चाट गई फलतः घोड़ी से नील नामक घोड़े का जन्म हुआ।

किंवदन्ती के आधार पर कहते हैं कि गुग्गा पीर को जन्मपूर्व जन्मजात चमत्कारपूर्ण शक्तियां उपलब्ध थीं। उदाहरणार्थ इनके जन्म के समय जन्मांधदाई संदल नयनों में ज्योति का प्रकाश हुआ था इतना ही नहीं एक बार बाच्छल पीहर जाते समय प्रसूता अवस्था में अपनी मां को सांप के आक्रमण के समय स्पर्श करके मृत्यु के हाथों से सचेत किया था। गुग्गा राणा के विभिन्न चमत्कारों की बात समस्त

मरू प्रदेश में जंगल में आग की तरह फैल गई और परिणामस्वरूप उनके सगे सम्बन्धी उनकी जान के दुश्मन बन गए। कहते हैं कि मौसेरे भाईयों, अर्जुन और सुर्जन ने गुग्गा को मृत्यु के घाट उतारना चाहा किन्तु वह दोनों युद्ध में मारे गए। दन्त कथा के आधार पर उसी युद्ध में इन्द्र नामक शत्रु ने उन का शीश काट दिया किन्तु आश्चर्य यह है कि वे बिना मुण्ड के भी शत्रुओं पर घात प्रतिघात करते रहे और मुण्डलिक की उपाधि से विभूषित हुए : महाराणा गुग्गा पीर के अनेकों युद्धों क वर्णन लोकगीतों एवं कोकगाथाओं में गुम्फित है जो गुग्गा नौंवी के पावन पर्व पर सुखना अथवा जगरात्तों में गायकों द्वारा श्रद्धापूर्वक गाया जाता है। छोटी सी छड़ी से डमरु पर पड़ी थाप तथा श्रद्धा विनीत अंगुलियों के कोरों से थामे सांरगी की गजर से तारों में निकली मधुर ध्वनि के वातावरण में एक अद्भुत संगीत लहर लहरा जाती है और भक्त जन भावविभोर होकर झूम-झूम जाते हैं। इस प्रकार राजस्थान से लेकर समस्त हि० प्र० के पूर्वी उत्तरी भू-भागों के अंचल में राणा गुग्गा के लोकगीत लोक संस्कृति के परिचायक हैं। यत्र तत्र सर्वत्र गुग्गा माढ़ियों पर गुग्गा नौंवी के पावन गीत गाए जाते हैं। बांस की छड़ी पर बने गुग्गा के पावन निशान ध्वजा, नारियल, मोर पंख कोढ़ियों द्वारा सुस्जित करके लहराते हुए विशालकाय ध्वज गुग्गा देवता की प्रतिष्ठा हैं। इन्हीं छड़ों का पूजन अर्चन विधिवत चलता रहता।

जब हम कथानक के ऐतिहासिक परिवेश को स्वीकार करते हैं वस्तुत: गुग्गा पूजन राजस्थान में पहले से प्रचलित था। प्राय: पशु धन की रक्षा हेतु तथा सर्पदंश की भय निवृति के लिए इनकी पूजा की महान् प्रतिष्ठा स्वीकार की जाती है। ऐतिहासिक परिवेश में गुग्गा राणा को चौहान वंशी स्वीकार किया गया है चौहान वंशावली की मान्यता के अनेकों पुष्ट परिणाम भी उपलब्ध हैं। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर गुग्गा चौहान को ददेरा के राव के रुप में स्वीकार किया जाता है। ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार मर इन्होंने अनेकों बार यवन अक्रांताओं के दांत खट्टे किए विभिन्न लोक गीतों में गुग्गा और मुहम्मद गजनवी के युद्धों का सजीव वर्णन मिलता है, कहते हैं कि पारस्परिक विरोध के कारण ही तो गुग्गा के मौसेरे भाई अर्जुन और सुर्जन गुग्गा के विरुद्ध मुहम्मद गजनवी के साथ मिलकर लड़े थे। इस प्रकार गुरु गोरखनाथ और गुग्गा जी का दसवीं शताब्दी के समकालीन होना सिद्ध होता। एक अन्य दन्तकथा के आधार पर गुग्गा चौहान मुहम्मद तुगलक का समकालीन भी स्वीकार किया जाता है। इतिहास में 1351-88 के मध्य फिरोज शाह तुगलक का ददेरी पर आक्रमण का वर्णन है। अत: गुग्गा जी चौदहवी शताब्दी में हुए। डॉ. सत्येन्द्र भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं और स्वीकार करते हैं कि इस युद्ध में ही गुग्गा पीर की मृत्यु हुई थी।

भले ऐतिहासक तथ्य कुछ भी रहे हों किन्तु इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि वे अपने समय के अनुपम चमत्कारी युद्ध पीर एंव ऐताहसिक पुरुष रहे हों यही कारण है कि भक्त आज भी गुग्गामाड़ी के मन्दिर में विभिन्न प्रकार की मन्नतें मांगते हैं और मन से इन्हें पुजते हैं। गुग्गा सर्पदेवता के स्वरूप में भी पूजनीय हैं। प्राय: सर्प का विष तांत्रिक विधान से उतारने वाले गड़े तांत्रिक को भी पहले मन्त्रजाप से पूर्व गुग्गा पीर की अराधना करनी पड़ती है गुग्गा पीर हमेशा अपने पांच पीरों के साथ विराजमान होते हैं। अमुक पांच पीरों में मम्ली, नर सिंह, अंगरक्षक भजनु एंव रत्तु तथा वाहन नीला घोड़ा पंजपीर के नाम से विख्यात हैं गुग्गा राणा सदैव राजस्थानी सैनिक वेशभूषा में चित्रित किए जाते हैं। सुवाथु के पावन स्थान से गुग्गा पीर का चमत्कृत आख्यान जुड़ा हुआ है उनका विवरण करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूं।

पर्वतीय उपत्यकाओं से घिरा हुआ एंव समशीतोष्ण जनवायु वाला यह छोटा सा नगर सागर तट से लगभग 3700 फुट की ऊंचाई पर कालका कुनिहार के राजमार्ग पर स्थित है। सुवाथु का सम्बन्ध ऐतिहासिक तथ्यों के परिपेक्ष्य में अपना अमूल्य महत्व रखता है। कहते हैं कि गोरखा राईफ़ल्ज मलवाण रेजिमैंट की स्थापना दिसम्बर 14,1815 को देवथल नामक स्थान पर सुवाथु में ही हुई थी। इस समय इसे सुवाथुम, सुबाठौर, सुबागढ़ तथा सुवाथु के नाम से ही स्वीकार किया जाता है। आज इसे सुवाथु कहते हैं। सुवाथु एवं निकटवर्ती क्षेत्र पौराणिक सिक्कों की पावन स्थली रही है। पाण्डवों ने 13 वर्ष का बनवास कालकुट वर्तमान कालका में बिताया था। कालकुट प्रदेश में बनासर, करोल, सोलन, डगशाई, कसौली तथा स्पाटु जाते हैं। महाभारत में इन स्थानों को सप्तदीप अथवा संसप्तक-गण के नाम से पुकारा जाता है। वस्तुतः सप्तदीप ही आज का सुवाथु है। 1857 के आसपास स्वतन्त्रता संग्राम से सम्बन्धित हि० प्र० की एतिहासिक गाथाओं का केन्द्र उन दिनों सुबाथु रहा स्वतन्त्रता सेनानी राम प्रसाद द्वारा लिखित कुछ अंग्रेजों के विरुद्ध प्राप्त दस्तावेजों के अंग्रेजों के हाथों में जाने के कारण उनको अम्बाला में फांसी हो गई थी। जहां एक ओर सुवाथु राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा वहां दूसरी ओर धार्मिक परिवेश में भी पीछे नहीं था। वस्युतः सुवाथु में ही गुग्गामाड़ी, गुर्गं-हर अथवा गुग्गुड़ी का पावन मन्दिर स्थित है। रक्षा बन्धन के दिन गुग्गा पीर की पुण्य स्मृति को पुन- जागृत करने के निमित गुग्गामाड़ी पर विशाल सुसज्जित झण्डा रंग बिरंगे वस्त्रों से विभूषित चढ़ाया दाता है। अमुक पापन पर्व के दौरान तांबे की त्रिशूल छत्री, छड़िया तथा नाग प्रतिमाएं लिए घूमते हैं तथा सारंगी के स्वर अलापते हुए डमरू की मनमोहक नाद के साथ लोकगीत अलापते हुए और झूमते हुए नजर आते हैं।

गुग्गा माड़ी के सुवाथु में अस्तित्व में आने के पीछे भी विचित्र दन्तकथा है। ऐसा विश्वास किया जाता है। लगभग पौने दो सौ वर्ष पूर्व जिला रोपड़ के चिझला गांव के निवासी बालमीकि गुज्जर रहता था उसका दूसरा भाई था छित्तर जिसे छोटू के नाम से भी पुकारा जाता था। छित्तर अथवा छोटू रोपड में गुग्गा पीर के गीत गाया करता था। वह मन का पवित्र एवं निश्छल व्यक्ति था। समस्त परिवार का लालन-पालन उसी पर निर्भर था। एक दिन रात को उसे स्वप्न हुआ और अमुक शक्ति ने उसे आदेश प्रदान किया कि सुबाठौर में गुग्गा माड़ी की स्थापना करे। ईश्वरीय प्रेरणा के आदेश को सिर माथे पर रख कर वह रोपड़ से चल कर सुबाठौर सुबथु में पहुंचा। अब छितरू को यह निश्चित करना कठिन हो गया कि माडी का मन्दिर कहां बने? गुग्गापीर का ध्यान ज्यों ही किया उसे एक उपाय सूझा कि वह काले बकरे के गले में ईंट लटका कर समस्त सुवाथु में घुमाए, जहां पर बकरा घुटने टेक कर विश्राम करे समझो कि गुग्गामाड़ी की स्थापना उसी स्थान पर की जाए। स्मरणीय है कि सुबाथु जाती बार वह मरू प्रदेश में जाकर बागड़ देश की ईंट लाया था। सुवाथु के नीचे वाले भाग में उत्तर पूर्व के समतल में छोटे से से मैदान में अमुक बकरा बैठ गया और गुग्गामाड़ी का पावन मन्दिर अस्तित्व में आया। समस्त भक्तों ने हर्ष विभोर होकर गुग्गा माड़ी के निर्माण में भाग लेना प्रारम्भ किया। भक्त छितरु समाया बागड़ से पुनः पांच ईंटें लाया और सर्वप्रथम मिट्टी से बनी गुग्गा माड़ी का मन्दिर बनाया। देखते ही देखते यहां के लोगों ने गुग्गा माड़ी के भव्य भवन का निर्माण किया। सुबाथु जनपद के सभी श्रद्धालुओं ने समय समय पर गुग्गामाड़ी के पावन धाम का इतिहास बनाने में कोई भी कसर बाकी न छोड़ी। लाला सन्तराम, लाला दिलीप चन्द सूद, पं० राज

चन्द्र, रतिराम और गुग्गा के परम श्रद्धालुओं में आज भी अमर हैं। कहते है कि रतिराम भवन श्रद्धालु के स्वर्गवास होने के समय इच्छा प्रकट की, कि गुग्गा माड़ी के महान् भक्त के सम्मानित पद पर भविष्य में पं० विद्यासागर को प्रतिष्ठित किया जाए तथा सम्मानित पगड़ी विद्यासागर जी की गुग्गा माड़ी के पावन पर्व के शुभारम्भ पर प्रतिवर्ष बांधी जाए। आजकल भी विद्यासागर जी को इसी समान से अंलकृत किया जाता है।

गुग्गा माड़ी के मन्दिर की आज भी पंजीकृत सभा तन मन धन से सक्रिय कार्य करती है तथा प्रतिवर्ष गुग्गा माड़ी के मेले का आयोजन बड़ी धूमधाम से किया जाता है। गुग्गा माड़ी का मेला आज सोलन जिले में सम्पन्न होने वाले प्रसिद्ध मेलों में से एक है। जिस प्रकार सोलन में दुर्गा अष्टमी, और कुनिहार में मेला लाहल (बसोआ) प्रसिद्ध है। महीनों पहले क्या बच्चे क्या बूढ़े और क्या जवान सभी माड़ी के मेले की प्रतिक्षा में डूब जाते हैं। प्रतिवर्ष मेले का आयोजन हर्षोल्लास का बातावरण छोड़ कर भविष्य के लिए भूत के स्मरण संकेत यादों की पैनी नश्तर के भाव छोड़ कर चली जाती है। सुबाथू जनपद में गुग्गा माड़ी के ऐतिहासिक मेले की परम्परा का सम्बन्ध भी बहुत पुराना है। प्रतिवर्ष भादों की शुक्ल सप्तमी से लेकर दशमी तक मेले का विशाल आयोजन होता है। हिमाचल पंजाब एंव हरियाणा आदि के श्रद्धालु अपनी-2 मन्नतें चढ़ाने के निमित्त मेले में मन्नतें चढ़ाकर अपने को भाग्यशाली समझते हैं। लगभग सप्ताह भर चलने वाले इस मेले के मुख्य आकर्षण कुश्तियां एंव प्रति रात्रि को ढाए जाने वाले गुग्गे पीर की गाथा से भक्तजन अपने को धन्य समझते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता जाता है कि गुग्गा माड़ी में जो सच्चे मन से मनौती मनाते हैं गुग्गा पीर उनकी मनोकामना को अवश्य पूरा करते हैं। नवमीं-दशमी के दिन मेला भरपूर जवानी पर होता है।

हिमाचल प्रदेश के सोलन जिले का यह गुग्गा माड़ी का महोत्सव है जो गुग्गा पीर की हिमाचली परिवेश से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रावधान रखता है। हमें आशा है कि कला संस्कृति का एवं भाषा अकादमी, भाषा विभाग गुग्गा माड़ी जैसे सांस्कृतिक पर्वों को विशष्ट ध्यान देकर हमारी युगीन सांस्कृतिक परम्परा को जीवत रखें।

—राजकीय महाविद्यालय
सरस्वती नगर
जिला शिमला (हि. प्र.)

बिलासपुर का दर्शनीय धार्मिक स्थल : बच्छरेटू मन्दिर

—डा० लेख राम शर्मा

हमारा देश प्राचीन वास्तुकला के असंख्य स्मारकों से भरा पड़ा है। यहां द्रविड़, आर्य, तुर्की और मुस्लिम वास्तुकला के बीसियों अवशेष भारत के इतिहास को कह रहे हैं। यद्यपि बाहरी आक्रमणों से इन स्मारकों को बहुत नुकसान पहुंचा है। पुनरपि मध्यप्रदेश का खजुराओ मन्दिर, उड़ीसा का कोणार्क और तामिलनाड़ू का मीनाक्षी मन्दिर विश्व में वास्तुकला के विशेष उदाहरण हैं।

हिमाचल प्रदेश धार्मिक दृष्टि से अग्रणी भूभाग रहा है। यहां सभी प्रमुख हिन्दू देव-देवताओं के सैंकड़ों मन्दिर हैं। हि. प्र. के बिलासपुर जनप्रद का सांस्कृतिक विरासत के लिए अपना अलग ही महत्व है। भाखड़ा बान्ध के कारण गोविन्दसागर जलाशय में निमग्न बिलासपुर शहर को मन्दिरों की नगरी कहा जाता था। उसमें 'स्वणेस्सर' (पुष्मुखेश्वर) आदि कितने ही मन्दिर आज भी अथाह जल राशि में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। झील में पानी भर जाने पर बाहर रह जाने वाले मन्दिरों के उपरी भाग, गुम्बद या कलश ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कोई डूब रहा व्यक्ति हाथ उठाकर यह संकेत दे रहा हो कि मैं डूब रहा हूं मुझे बचा लो।

इसी पुरानी शृंखला का एक सदियों पुराना शिव मन्दिर 'बच्छरेटू' नामक स्थान में है। इस स्थल का बच्छरेटू नाम भी इसी शिव मन्दिर पर आधारित प्रतीत होता है। इसके प्रांगण में बैल के पूर्ण आकार में निर्मित शिववाहन नन्दी की मूर्ति इस नामकरण का कारण है। संस्कृत के वत्स या वत्सर शब्द से हिन्दी और पहाड़ी आदि प्रान्तीय भाषाओं में 'बछड़ा' बच्छा या बच्छू' आदि शब्द आए हैं। बच्छड़े की मूर्ति होने के कारण उस जगह को 'बच्छेड़टू-बच्छेड़टू' कहा जाने लगा। 'बच्छड़ेटू' शब्द मन्दिर का विशेषण बन गया अर्थात् 'बच्छड़े वाला मन्दिर'।

यह स्थान भाखड़ा बांध एवं सुविख्यात बाबा बालकनाथ के मन्दिर दयोटसिद्ध के बीच स्थित है। बाबा बालकनाथ को वाया भाखड़ा-आने जाने वाले हजारों तीर्थयात्रियों का यह विश्रामस्थल है। दोनों ओर से चढ़ाई चढ़ कर आने वाले थके-मान्दे यात्रियों के लिए यह स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि कोई ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकता है कि पर्वत शिखर पर इस प्रकार का शीतल पानी तथा घनी छाया मिल सकेगी। यहां की प्राकृतिक शोभा अनोंखी ही है। पहाड़ी की मनोहर चोटियां, अजस्र बहने वाली हवा, पहाड़ी के नीचे मीलों फैले झील के पानी में आ जा रहे बोटों का दृश्य दर्शक के मन को बलात् मोह लेते हैं।

मन्दिर में प्रवेश के लिए 12 दरवाजे हैं जिनमें लकड़ी का कोई प्रयोग नहीं हुआ है। प्राय: 5-6 फीट ऊंची द्वारशाखें एक-एक ही पत्थर की बनी हुई हैं। मन्दिर के प्रमुख द्वार पर गेरुएं रंग में हनुमान् तथा काले रंग में भैरव मन्दिर के प्रहरी के रूप में खड़े हैं। मन्दिर के आंगन में पूरे आकार का पत्थर का सफेद बैल असली बैल के भ्रम में डाल देता है। बैल के पिछले खुरों से कमली तक 4, 5 फीट लम्बा काला सांप अपने आप में पत्थर की कारीगिरी का उत्कृष्ट नमूना है। बैल की पूंछ में लिपटे गण तथा विभिन्न रंगों में काठी की साज-सज्जा सगतराशी के अनुपम उदाहरण है।

अन्य प्राचीन मन्दिरों की तरह यहां भी मन्दिर की दीवारों के पत्थरों पर खुदे हुए चारों ओर लगभग 80 चित्र हैं। प्रत्येक चित्र किसी न किसी पौराणिक आख्यान से सम्बद्धित है। उदाहरणार्थ कहीं पृथ्वी का उद्धार करते हुए वरहा रूपी भगवान्, नृत्य करते हुए शिव के गण, बीणावादन करती हुई सरस्वती, वेद पढ़ते हुए ब्रह्मा, शिव विवाह, कहीं वन्य जन्तुओं से क्रीड़ाएं कर रही पार्वती। कुछ चित्र अपने आप में शोध का विषय हैं क्योंकि उनका स्रोत वर्तमान पुराणों में नहीं मिलता है।

यहां वैशाखी को एक मेला लगता है जिसमें जिला बिलासपुर, ऊना, हमीरपुर व रोपड़ से बड़ी संख्या में लोग आते हैं। रंग-बिरंगी पोशाकों में अपार जन समूह, जगह-जगह 'गंगीगीतों' के मुकाबले, हिण्डोलों में झूल रहे लोग मेले का विशेष आकर्षण होते हैं।

वैशाखी वाले दिन यहां के 'नौण' में प्राय: सभी श्रद्धालु स्नान करते हैं। स्नान किए बिना यहां आना अपूर्ण ही समझा जाता है। भीड़ से दूर रहने वाले लोग पिछले दिन रात को ही यहां आ जाते हैं अर्धरात्रि के बाद स्नान करके चले जाते हैं। इसी प्रकार पिछले दिन से ही लोगों का तांता लग जाता है। वैशाखी स्नान को यहां गंगास्नान के बराबर महत्व दिया जाता है। इस सम्बन्ध में दो किम्बदन्तियां पाई जाती हैं :—

प्रथम किम्बदन्ती के अनुसार किसी समय यहां अचानक जलधारा फूट पड़ी। पानी तेज गति से बढ़ने लगा। पानी का चढ़ाव रुकने का नाम तक नहीं ले रहा था। लोगों ने मकानों व फसलों की क्षति को दृष्टिगत रखते हुए पानी पर काबू पाने के लिए तत्कालीन शिवमन्दिर में अराधना प्रारम्भ कर दी परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। इसी दौरान भागीरथ नामक पुजारी की गंगा नामक गाय भागती हुई वहां से निकली। पुजारी ने जोर की आवाज देकर गंगा को रुकने के लिए कहा। बस, फिर क्या था, पानी बढ़ने से वहीं रुक गया पुजारी को रात को स्वप्न हुआ कि मैं गंगा थी तथा अपने आराध्य देव शिव के यहां प्रकट हो रही थी, आपके निर्देशानुसार रुक रही हूं, अब मैं वैशाखी को ही यहां के जल में अपना वास किया करूंगी।

दूसरी किम्वदन्ती के अनुसार यहां के रीतू नामक महात्मा वृद्धावस्था के कारण जब हरिद्वार जाने में असमर्थ हो गए तो उन्होने गंगा मैया की अराधना करके उससे यहां प्रकट होने का निवेदन किया। महात्मा की प्रार्थना से वहां जलस्रोत निकल पड़ा। जलधारा से शोर होने लगा। साथ में ही गोदोहन कर रही एक बुढ़िया ने समझा कि कोई चीज उसकी ओर आरही है। गो द्वार दूध न दिए

जाने की आशंका से वृद्धा ने कहा कि वहां रुक जाओ। पानी बढ़ना रुक गया। रात को महात्मा को स्वप्न हुआ कि वृद्धा की भावना के अनुरूप में यहां आने से रुक गई हूं अब वैशाखी को ही यहां आया करूंगी।

इन किम्बदन्तियों की सत्यता के सम्बन्ध में अधिकार पूर्वक तो कुछ नहीं कहा जा सकता है किन्तु इस जल धारा का गर्मियों में कम न होना तथा बरसात में न बढ़ना ऊपरलिखित दन्तकथाओं पर विश्वास करने को बाध्य कर देता है क्योंकि मौसम के अनुसार पानी को घटना-बढ़ना चाहिए। जन विश्वास के अनुसार गंगाजल के बढ़ाव को जहां रोक दिया है वह वहीं स्थिर है, न वह बढ़ा न ही घटा।

इस शान्त, सुरम्य और धार्मिक स्थल को पर्यटन की दृष्टि से विकसित किया जा सकता है। सड़क से जुड़ जाने के कारण पर्यटक बाबा बालकनाथ, भाखड़ा, गोन्बिदसागर और बच्छरेटू के पर्यटन का एक साथ ही आनन्द उठा सकते हैं।

यहां ऐसे तत्व भी विद्यमान हैं जिनका वास्तुकला और ऐतिहासिकता की दृष्टि से अवलोकन किया जा सकता है। इन तत्वों में मन्दिर के बिल्कुल सामने जीर्ण-शीर्ण अवस्था में विद्यमान विशालकाय किला प्रमुख स्थान रखता है।

राज॰ उच्चविद्यलय
गण्ढीर
जिला बिलासपुर
हि॰ प्र॰ 174029

निरमण्ड परशुराम पंचस्थली

—शरभा नन्द श्रवण

आदि काल का वसित ग्राम निरमंड जो आज भिन्न-भिन्न प्रसंगों से चर्चित है। कुछ लोगों का कहना है कि यह परशुराम की बसाई नगरी है तथा कुछ लोगों का मत इस से पूर्व कुछ उच्च कोटि के ऋषि मुनियों की बसाई हुई नगरी है जो युक्ती संगत ही है। यहां की संस्कृति, कला, विद्वत्ता, ज्ञान, धार्मिक संस्थान, मन्दिर तथा सभ्यता स्पष्ट करते हैं कि पर्वतीय-क्षेत्र या उत्तरी भारत में यहां के ऐतिहासिक महत्व का है।

यहां की विशेषता इस लिए भी रही कि यहां सन् 1912 तक किसी की मौरुसित व मजारियत को नहीं स्वीकारा वह चाहे (मुसलमानी) मुगल बादशाहियत हो या यमनों (अंग्रेजो) का राज अथवा छोटे बड़े राणे रावत। यहाँ की कार्य प्रणाली पंचतंत्र यानी पंचायती राज के आधार पर ही चलती रही यह विधान आर्य वर्त परशुराम का ही स्वचालित है।

ऐसा नहीं कि यहां कोई पहुंच न पाया हो कई बार बड़े-बड़े सम्राट व भिन्न-2 साम्प्रदाय के के मठाधीश तथा धर्म नेताओं ने प्रास्त करने का प्रयत्न किया जैसे महाराजा विक्रमाजीत काल में उनके दस वजीरों में से एक माहनुभाव समर सैन जो कि मण्डी राज्य के शासक (राजा) बने थे, इन्होंने मण्डी से स्पीति तक का शासन किया था। स्पीति की ही राज कन्या नूना से इन्होंने विवाह किया था। एक बार स्पीति से वापिस आती बार जब वह यहां लौटे तो यहां की पंचायती राज प्रणाली देख कर प्रसन्न हुये और एक ताम्र पत्र भेंट किया जो आज भी यहां मौजूद है।

दूसरे बौद्ध भिक्षुओं ने भी यहां डेरा जमाने का प्रयत्न किया परन्तु हमारे विद्वानों ने इसे भी नहीं स्वीकारा जिसका प्रमाण हमारे विद्वान पण्डित आज भी लाल रंग की गौ मुखी टोपी। पहनते हैं पीले रंग की नहीं क्योंकि बोधभिक्षु पीली गौ मुखी टोपी पहनते थे। यहां की कर्मकाण्ड तथा पूजापद्धति में भिन्नता थी। जब कि यहां के बाह्य क्षेत्र में छुट-पुट राणे तथा राजा बुशहर और राजा कुल्लू का कई बार आपसी तनाव रहा कभी इन क्षेत्रों को कुल्लू वाले लेते कभी बुशहर वाले परन्तु निरमंड को नहीं छेड़ते थे सभी गुरु स्थान मानकर छोड़ देते थे।

पंचस्थली (पांच मन्दिर)

1. अम्बिका मन्दिर :

लोग अटकलें लगाते हैं, कि यह मन्दिर पहले ग्राम के मध्य भाग में था। परन्तु आज यह ग्राम के साथ लगता पश्चिम की ओर है इस मन्दिर को आदि माना जाता है परशु राम काल से भी पूर्व इस का भवन कई बार बना बरबाद हुआ फिर बना परन्तु मूर्ति वही है।

इस मन्दिर की स्थिति में अधिकांश सुधार मण्डी के महाराजा उग्र सैन के अहद में हुआ चूंकि उग्र सैन ने निकट के छोटे-2 राजा तथा राणों बहुत सी भूमि को हथिया कर तथा उनकी अंदरुनी सम्पत्ति को ले कर मन्दिर में दे दिया, भूमि को भी श्री देवी अम्बिका के नाम कर दिया जिससे मन्दिर में अच्छी आमदन होने के साथ-2 व्यवस्थित रूप से पूजा यज्ञादी चले तब इसी मन्दिर में यहां के ब्राह्मणों ने साधना द्वारा सिद्धियां प्राप्त की बाम मार्गी यानी कर्मकांड के बड़े-2 विद्वान साधक इसी मन्दिर में साधना द्वारा इष्ट साक्षात कराते थे, रज-तम प्राप्ती हेतु (भगवान) आर्य वर्त परशुराम ने इन्हीं देवी की आराधना की थी देवी का साक्षात्कार किया तथा अजेय वरदान लिया।

महारानी नूनू ने अपने पति समरसैन की विक्रमाजीत के आदेशानुसार विजय पताक के पश्चात मनौती हेतु ताम्र पत्र तथा एक कीमती हार भेंट किया।

मण्डी के महाराजा उग्रसैन ने महारानी को राज रोग होने पर देवी से स्वास्थ्य लाभ होने की कामना कर मनौती हेतु मोती हार तथा बहुत सी भूमि भेंट की जो आज भी मन्दिर में है।

2. दक्षिणी महादेव

यह मन्दिर अम्बिका मन्दिर के निकट ही कुछ गजों की दूरी पर स्थित है। वैसे इसे खदरेशड़ में माना गया था जहां इसका पूर्व प्राचीन मन्दिर था वहां अब आबादी नहीं रही क्यों कि यह स्थान लहासा पड़ने से दब गया था खुदाई करने के पश्चात इसे यहां लाया गया और जार पीनी नामक ब्राह्मण ने इस मन्दिर को फिर से बनाया।

खदरेशड़ से लाये शिवलिंग की स्थापना की। जार पीनी ब्राह्मण ने इसकी योग पूजा के लिए 60/71 बीघा भूमि भी दी। इतना ही नहीं जार पीनी ने अपने नाम पर भी एक मन्दिर बनाया जो कि दस नामी अखाड़ों के साथ है यह मन्दिर इन्ही ने शैव तथा वैष्णव के झगड़े पर सोगन्ध खाने हेतु बनाया था इस मन्दिर में शिव लिंग है तथा पांचों पांडवों की बड़ी-2 मूर्तियां थीं जो अब सरकार ने कहीं संग्राहलय के लिए यहां से ले गई हैं। इसके बाहर के बड़े कमरों में कौरवों की मूर्तियां भी थी जो दीवार में चित्रित थीं। और भी कुछ मूर्तियां तथा समाधियां थीं जिनके कुछ अंश अब भी हैं और यहां कसमें अब भी होती हैं।

3. सांयकार

यह मन्दिर यहां के मुख्य मन्दिर परशुराम के साथ लगता ही छोटा सा मन्दिर है इसमें शिव लिंग है इसका खर्च परशुराम मन्दिर से ही चलता है इस के बाहर एक बीर का बड़ा सा बुत है जिसे लोग हुलका बीर कहते हैं।

4. चण्डी मन्दिर

यह मन्दिर यहां का सर्वप्रथम सुदृढ़ तथा सम्पन्न मन्दिर था बहुत सारा सोना चांदी था भूमि भी काफी थी इसके निकट बाण गंगा नाम की बावली है जो आज भी मुण्डा यज्ञ में महत्वपूर्ण स्थान है।

16वीं शताब्दी में रंजीत सिंह के पश्चात् गुलाब सिंह जिस गिरोह को आज सिंह मण्डयाल की संज्ञा देते हैं के साथ आया और ने इस मन्दिर को लूट कर ले गया। यह सिंह मण्डयाल यहां से बदलेऊहरेर से होते हुए भागे और बंजार वैली में तुंग नामक स्थान पर उधर के लोगों ने इन्हें प्रास्त किया और मार दिया तथा लूटा हुआ माल उधर के मन्दिर में दे दिया। जिसके कारण चण्डीमन्दिर अब इतनी अच्छी स्थिती में नहीं रहा।

5. सत्य नारायण मन्दिर (ठाकर द्वाला)

यह वैष्णव मन्दिर ग्राम के मध्य भाग में है। वैष्णव मन्दिर है भिऊंटा मुहल्ला शांडिल्य गोरे पूत्री के इस अनुयायी हैं वैष्ण होने के नाते यही लोग इस की पूजा आदि का प्रबन्ध करते हैं। पाषाण मूर्ति अद्भुत भव्य सुन्दर तथा ऐतिहासिक व पौराणिक है। इसे यहां अधिक ठाकर द्वाला ही कहते हैं।

केन्द्र परशु राम मन्दिर

इन सब मन्दिरों का केन्द्र परशुराम मन्दिर ही रहा। इनकी देख-रेख पंचायती राज (पंचतंत्र) प्रणाली से होती थी सब हारयान मुजारयान सदस्यों का चयन करते थे, सदस्यों का अध्यक्ष कारदार कहलाता है। यह लोग यहां की हर व्यवस्था के अधिकारी होते थे अब भी ऐसा ही है चयन डी. सी. या तहसीलदार की अध्यक्षता में होता है। इनकी बैठक परशुराम मन्दिर में ही एक कमरे में होती थी कुछ कर्मचारी भी रखे जाते थे जैसे कराउ-महाता आदी कई बार जब सर्वसाधारण बैठक की आवश्यकता पड़ती तो मन्दिर के बाहर एक गोलाकार पत्थर की बनी एक गज ऊंची थड़ी पर बैठ कर किया करते थे जो आज भी है इसे चौतंड़ा कहते हैं।

परशु राम का विस्तार से उलेख करना यहां आवश्यक भी है परन्तु लेखक असमर्थ है क्योंकि यह विषय बहुत लम्बा है इस विषयं को कुछ मौका शनास लेखकों तथा अनुयायों ने दूर राज्यों तक जोड़ दिया है। आगे फिर उल्लेख करूंगा। इस से पूर्व यहां के मन्दिरों की आस्था व विशेषता तथा विद्वानों की चर्चा अवश्य करूंगा।

मन्दिरों की आस्था (मनौती)

1. फ़िलस्तीन द्वीप जो आज यहूदियों का देश कहलाता है पूर्व काल में आर्यन शासक भी था से दो मूर्तियां प्राप्त की जो (जल देवता) वरुण तथा बारूणी की हैं जिन की आवश्यकता यह नर मेधी (मुण्डा) महायज्ञ में थी, नरबलि इन्हीं देवता के निमित होती थी। आचार्य चतुरसैन के वयं रक्षाय: पुस्तक के अनुसार रावण तथा एक राक्षस युवती की बली राक्षस दानव द्वारा भी इन्हीं जल देवता के निमित हो रही थी युवती की बलि हो गई और रावण बच गये थे यज्ञ अधूरा रह गया। यह मूर्तियां बहूमूल्य बताई जाती हैं इनका आकार (बनावट) मछली जैसा है। दुर्भाग्य वश आजकल यह दोनों मूर्तियां रामपुर अदालत के कब्जे में हैं।

2. महाराजा काश्मीर श्री अग्रतला की रानी द्वारा दी गई भेंट देवी की मुख मूर्ति जो ईसा से 900 वर्ष पूर्व की है भव्य सुन्दर तथा बहुमूल्य है इसे रानी ने अग्रतला के काश्मीर से चीन तक के क्षेत्र की विजय प्राप्ति पर मनौती के रूप में दिया था इस मूर्ति पर काश्मीरी टाकरी में रानी देवी लिखा है। कुछ लोग इसे रेणुका देवी भी पढ़ते हैं। यह मूर्ति उपरोक्त अदालत में ही है।

3. समरसैन विक्रमाजीत काल।

4. उग्रसैन रणजीत सिंह काल इन दोनों नरेशों ने एक एक मोती हार बहुमूल्य भेंट किए थे जो आज भी किसी हालत में मौजूद हैं तथा समरसैन की पत्नी द्वारा दिया ताम्र पत्र भी है।

5. राणा खनैरटू से प्राप्त बहुत सारा ताम्बा तथा ताम्बे के बने बड़े-2 बर्तन जो कि परशु राम मन्दिर में प्राप्य हैं। ताम्बे की चादरें अम्बिका मन्दिर के ऊपर पूरी छत में लगी हुई हैं। बजुर्गों का कहना है खैरटू राणा की ताम्बा की खान इसी इलाके में अपनी थी।

6. इसी प्रकार से राजा बुशहर, कुल्लू तथा शांगरी ने भी यहां कई प्रकार के उत्तम धातु के कलश आदि भेंट किये हैं जब-2 यहां यज्ञादि होते थे। इनका पूर्ण सहयोग मिलता था। और भी कई प्रमुख लोगों ने देवी की मनौती हेतु कीमती वस्तुएं भेंट की है।

गुरू सत्ता

पचास वर्ष पूर्व यहां न कभी पाठशाला थी न विद्याध्ययन का माध्यम और न ही यातायात के साधन थे लोग यहां से पैदल ही सैंकड़ों मील हरिद्वार तथा काशी तक जाते थे। फिर भी यहाँ के लोग देव वाणी के प्रांगतन्याय शास्त्री ज्योतिष के प्रकांड विद्वान तथा तंत्रोत एवं कर्म-कांड के पूर्ण साधक रहे। ब्राह्मण लोग घर-घर में हवन तथा सवा लाख गायत्री जाप नित्य करते थे। ग्राम को चारों ओर से (वाम मार्ग) तंत्रोक्त रेखा से पूर्ण सुरक्षित कर रखा था ताकि किसी अन्य आपदा से बच कर सुख सम्पदा बनी रहे। अत: स्पष्ट है कि यहाँ की गुरू सत्ता कितनी महान थी। गुरू बाणी यानी गुरू के मुख वाणी से ही हर ज्ञान की प्राप्ति होती थी यहां अपनी ही हस्त लिखित हर प्रकार के मंत्र, तंत्र, कर्मकांड तथा वेदाध्ययन की पुस्तकें प्राप्य थी। ज्योतिष का भी अच्छा प्रचार रहा जो आज भी सिर्फ गुरू कृपा से ही चल रहा है। गुरुत्व प्रणाली प्राणी मात्र में ही नहीं अपितु देवताओं में भी प्रख्यात है। दूर-दराज से यहां देव-गुर मान्यता प्राप्त करने आते थे अब भी आते हैं प्रत्येक गुर जो यहां से मान्यता प्राप्त हैं सर्वोतम माने जाते हैं। मनुष्यों में भी गुरु चेले की की प्रणाली है और देवी-देवताओं में भी गुर चेला माध्यम है।

अनेक ऐतिहासिक लेखाकार यहां प्रतिवर्ष अपने-अपने विषय के स्वाध्याय हेतु आते हैं यथा तथा सफलता प्राप्त करके चले जाते हैं। इनमें विदेशी लेखाकार भी शटलवर्त, हेमा (ऐमा) तथा चिट वुड की राय इस प्रकार है कि यहां पूरे पर्वती क्षेत्र के ऐतिहासिक-सामाजिक, सांस्कृतिक तथा पौराणिक केन्द्र है। इसमें सन्देह नहीं यह सब गुरू प्राणाली व गुरू की कृपा का ही वरदान है।

इस संदर्भ में एक किस्सा 50 वर्ष पूर्व का है ग्राम के पश्चिम की ओर कुछ दूरी पर वशला ग्राम में एक डूढ़ी नामक ब्रह्मण थे अनपढ़ होते भी उन्होंने गुरू कृपा से कई प्रकार की मन्त्र साधना की थी। वह लोगों को देखने में तब मिली जब वह एक लकड़ी की गेनी पर बैठ कर एक बच्चे सहित कुल्लू दुशहरा में गये और सांय उसी पर बैठ कर आंख झपते ही वापिस पहुंचे यह गेनी अब भी है कि लोक प्रसिद्ध है डूढ़ी की गेली।

यह स्थान एक वैली का मध्य भाग भी है जिसे कुर्पन वैली कहा जाता है यहां पर कुर्पन खड्ड बहती है जिसके दोनों और क्षेण सर से लेकर सतलुज नदी के मिलान तक यह वैली है। इसी क्षेत्र में तहसील भी है जो निरमंड तहसील कही जाती है। इसी बीच में चार चम्मू, चार महेश्वर, सात भ्राडी, नौ नाग तो है ही और भी कई ग्रामों में अपने-अपने मन्दिर हैं जिनमें प्रमुख वाड़ा कूई में दुर्वासा ऋषि का मन्दिर तथा सराहण में बड़ा देवता सराहणी देवता हैं जो असल में सारंग ऋषि है। यह स्थान इतना सुन्दर है कि जिसकी सजावट तथा बनावट पर प्रकृति से कोई कसर नहीं रखी परन्तु सारंग ऋषि ने भी इस स्थान को इतना महत्वपूर्ण बनाया जिसकी उपमा नहीं हो सकती। सारंग बाग-राहण बाग इन्हीं ऋषि के एक चेले ने बनाया जिन्होंने यहां एक दानव को गज मारकर भगाया और तथा उसके पीछे पानी की एक नहर सी बह निकली जो आज भी बाग के बीच में सर्प आकार में बहती जा रही है। चारों ओर घना जंगल है जंगल में विभिन्न प्रकार की जड़ी बूटियां जम्द्र जोत, शिव डंडी पंजमूल तथा साल पंजा आदि उपलब्ध होती हैं।

उत्सव :- वैसे तो वैली भर में कई महोत्सव मनाये जाते है परन्तु प्रमुख निम्न लिखित हैं जो विशेष ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा पौराणिक महत्व है।

1. निरशु : इस उत्सव में अनेक प्रकार की झांकियां निकाली जाती हैं जो प्राचीन तथा आधुनिक होती हैं। यह हर साम्प्रदाय, हर वर्ण प्रसिद्ध विभूतियां—कवि, राजा महाराजा सामाजिक कृत्य जैसे कृषि, व्यापारी साहूकार, जीव-जन्तु, पालतू पशु आदि का प्रदर्शन होता है। कुछ अंश देवी-देवता व दानव मानव की झलकियां भी दिखाई जाती हैं। यह क्रम दो रातों में पूरा होता है। दिन में नाटी का आयोजन होता है।

2. **कावा छठ** : यह मेला भले ही अब कुछ कम हो गया है परन्तु इसका राजनीतिक महत्व है परशु राम जी की सहस्त्र बाहू पर विजय प्राप्ति का समाचार (काव) काग द्वारा मिलने पर स्थानीय सात देवताओं के रथ सजाकर विले-इनाए में यह मेला मनाया गया। जब कि बाकी मेले यहां नहीं होते। यह मेला भादों की संक्रांती को मनाया जाता है। यहां के कुछ लोग काग भाषा भी जानते थे तभी इसका नाम कावा छठ रखा।

वूढ़ी दिवाली : यह मेला मकर (मकसर) की अमावस्य से प्रारम्भ होता है तीन दिनों तक चलता है। प्रथम दिन रात्री में दम नामी अखाड़ा के मध्य भाग में अग्नि के बहुत बड़े कुन्ड के गिर्द घूम कर रामायण तथा महाभारत को दर्शाया व गाया जाता है इसकी गाथा यहीं की भाषा में कवि (कवीरी) लोग गाते हैं लोग नाचते हैं पहले अग्नि पूजा होती है आधी रात गढ़िये (पांडव) आते हैं तीसरे पहर (दानव) कौरव आते हैं गढ़िये दानवों को अग्नि कुण्ड का पूरा चक्कर लगाने नहीं देते। दिन को नाटी होती है पूरे दो दिनों में अच्छे-2 कार्यक्रम चलते हैं। सरकार की ओर से भी इस मेलां में काफी सहयोग तथा धन प्राप्त होता है इसका आयोजन मेला कमेटी करती है ।

रीति रिवाज तथा पहरावा

यहां के रीति-रिवाज तथा पहरावा जिला शिमला के ऊपरी क्षेत्र से मिलता है, प्राचीन बुशैहर राज्य के समस्त क्षेत्र 12/20 वसार से रोहड़ू नंडला, जुब्बल, कोटखाई तथा सिरमौर तक बोली भाषा भी मिलती जुलती है। इन सभी क्षेत्रों में सांस्कृतिक धार्मिक तथा त्योहार-उत्सव आदि का पारस्परिक जोड़ है। और यह जोड़ आदि काल से ही लगता है शादी-गमी में भी इन क्षेत्रों का आपसी सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। यहां के गुरू पुरोहितों का इन क्षेत्रों में आज भी सम्मान है। प्राचीनऋषि मार्ग भी नाहन से चल कर मावर नदी के साथ 2 रोहड़ू तक तथा रोहड़ू से सूंगरी जोत होते हुए यहां तक था। दूसरा बुशैहर का नीचला भाग सतलुज नदी के साथ-2 काव मुमेल, नीरथ, दत नगर होते हुए था जिसे हम परशुराम द्वार मानते हैं इनका आगमन इधर से ही हुआ था।

इस कुर्पन (निरमण्ड) क्षेत्र को जिला कांगड़ा तथा पश्चात जिला कुल्लू में रखा गया है जो सिर्फ राजनयिक लाभ हेतु ही सिद्ध होता है जब कि इस ओर को वशलेऊ तथा जलोड़ी पास हर जोड़ में वाधा है।

वर्तमान यातायात मार्ग

तिब्बत वार्डर रोड़ जो एक प्रसिद्ध मार्ग बन गया है शिमला से आठ नौ हजार फुट की ऊंचाई से चल कर नारकण्डा से सेंज नदी सतलुज के पास ढाई-तीन हजार पर उतर कर किन्नौर तक जाता है। 104 कि. मीटर हिमाचल राजधानी शिमला से दूर पहुंचती जहां से निकटवर्ती कई क्षेत्रों के लिए गाड़ियां जाती हैं जो रामपुर की मार्किट के साथ सब क्षेत्रों को जोड़ती हैं यहीं से एक दो बसें वागी पुल तक भी जाती हैं जिसके मध्य में यह क्षेत्र आ जाते हैं। पूरे मार्ग में तथा साथ लगते मन्दिर इस प्रकार हैं।

सूर्य नायायण—नीरथ
दतात्रे स्वामी—दत नगर
चार महेश्वर
चार चम्पू

सात—भ्राड़ी
नौ, नाग
भीमा काली
अनेक बोध मन्दिर निरमण्ड के कई मन्दिर

गांव व डाकघर—निरमण्ड,
जिला कुल्लू आउटर-सिरान (हि. प्र.)

लोक गीत - मादरी

—बी. आर. जसवाल

प्रस्तुत लोकगीत संगड़ाह (सिरमौर) क्षेत्र का प्रसिद्ध लोक प्रिय गीत है। इसमें मादरी नामक एक सुन्दर नवयौवना की विशेष भूमिका है, जो गाने बजाने में बहुत शौकीन होती है तथा जहां भी क्षेत्र में सांस्कृतिक कार्यक्रम हो उस जगह पहुंच जाती है। मादरी इतनी सुन्दर होती है कि कोई देखने वाला नवयुवक उसकी ओर आकृष्ट हो जाता था। तथा उससे विवाह प्रस्ताव रखता था। वह अपने आपको सबसे सुन्दर समझती थी। उस क्षेत्र में एक बार एक लड़के की शादी हो रही थी तथा उस शादी में पहाड़ी क्षेत्र के आसपास के गांवों के बहुत से संगीत प्रेमी सांस्कृतिक कार्यक्रम देखने के लिए शरीक हुए थे तथा इनमें कुछ कलाकार भी होते हैं। शादी में सांस्कृतिक कार्यक्रम अर्थात सिरमौरी गीतों, नाटियों इत्यादि को सुनने के लिए वहां मादरी नामक वह युवती भी पहुंच गई। उसके सौन्दर्य को देखकर सभी एकत्रित लोग उस पर लट्टू होने लगे तथा मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशंसा करने लगे, परन्तु वह किसी भी नवयुवक पर नजर नहीं डालती। कुछ देर बाद जब सांस्कृतिक कार्यक्रम शुरू हुआ तो एक नौजवान गायक उस मादरी नामक युवती के पास गया तथा उससे अपनी शादी का प्रस्ताव रखते हुए निम्नलिखित गीत गाने लगा तथा उसी गीत का नाम मादरी पड़ गया। ये लोक गीत संगड़ाह क्षेत्र की स्थानीय भाषा में प्रस्तुत है तथा इसके साथ हिन्दी में इसका भावार्थ भी दिया जा रहा है :—

1. लाई रे बेने मादरी ह रे डाली दे चांगे।
डाली दे पारो मादरी होरे डाली दे चांगे॥

भावार्थ :— लड़का मादरी को कहता है कि :— हे मादरी मैं तुम्हारे साथ शादी करना चाहता हूं जिस प्रकार हरे पेड को कहीं-2 से काटने पर उस वृक्ष पर जख्म हो जाते अर्थात निशान पड़ जाते हैं इसी प्रकार यदि तू मेरे साथ यदि शादी नहीं करती तो मेरे दिल में भी जख्म पड़ जायेंगे।

2. जीवटा सूपा ताइगे तू ऐवे, कालीजा गे।

भावार्थ :— लड़का मादरी को सम्बोधित करके कहता है—कि मैंने अपना दिल तेरे हवाले कर दिया है। यदि तू इस पर भी मेरे साथ शादी करने के लिए तैयार नहीं होती तो अब मैं अपना कलेजा काट कर तुम्हें दे दूं तथा अपना सारा तन, मन, धन तुम्हें ही समर्पित करता हूं।

3. देखो रे शे नौटवे ऊचे शूली दे टांगे।
खो रे खाए मादरी तेरे नोखरे रागे॥

भावार्थ :—लड़का मादरी से कहता है—कि हे मादरी सुन्दरी तूने मुझे इस प्रकार सूली पर टांग दिया है जैसे कि मंदानी इलाके से आने वाले नटवर (नट्) लोग हमारे पहाड़ी क्षेत्र में अपनी कला प्रदर्शन करते हुए बांस के डण्डे पर ऊचे स्थान पर अपने आप को टांग लेते हैं तथा जिस प्रकार वे अपने प्राणों की रक्षा करते हैं मैं भी उसी तरह से अपने आप को बचा रहा हूं।

4. लाई रे बेने मादरी गुमा गोड़ी री गीओ।
गुमा गोड़ी रे गीवों दा मेरा डमका,
मेरा डमका जीओ॥

भावार्थ :—इसके उपरान्त जब उस शादी में नाटी इत्यादि का नृत्य कार्यक्रम चल रहा था तो वह नवयुवक उस मादरी को सम्बोधित करता है कि हे मादरी—तू इस शुभ समय में नाटी मत लगा। यदि तू नाटी लगायेगी तो मेरा मन अनियन्त्रित हो जायेगा अर्थात् मेरा दिल तुम्हारे प्रति पिघल जायेगा।

5. दूरो दा पोड़ा हेरणा चूड़ी लाणी रा हीयो।
बाठणी रे लागे तोईणा देखो पोरलो नीयो॥

भावार्थ :—जिस प्रकार चूड़धार की बर्फ से ढकी चोटियों की सुन्दरता को दूर से ही देखना पड़ता है—उसी प्रकार एक सुन्दर युवती के नयनों को दूर से देखना चाहिए। यदि स्त्री से प्यार-मुहब्बत हो जाती है वह बाद में बर्बादी का कारण भी बन सकती है तथा उस युवति की इच्छायें पूरी न होने पर वह उस व्यक्ति को बर्बाद भी कर देती है।

6. चीशी लागी पाणी री चीशो के पींदा न घीयो।
ठोगड़ी जाई मेरी शाशुए भेजी घोरे के धीयो॥

भावार्थ :—यदि किसी मनुष्य को प्यास लगे तो उसकी प्यास पानी पिलाकर ही बुझाई जा सकती है, घी पिला कर नहीं। इसके पश्चात् सास के बारे में बताया गया है कि जिसकी सास समझदार हो वह अपनी लड़की को शीघ्र ही अपने घर भेज देती है अर्थात वह अपनी लड़की को भी विवाह के बाद घर में न रखकर ससुराल भेज देती है।

7. सासो दा भोरियो कुरी घो जैसा।
काजली बूणो दा सीयो।
मादरी रे चाले बिलाख कोशी रे देयों ने भीयो॥

भावार्थ :—सास के दिल की क्रोध की कल्पना काजली नामक जंगल के शेर से की गई है कि वह कितना रोब तथा गुस्से वाला होता है। तथा यदि हम उस सुन्दरी मादरी के ब्याह की बात करने जाए तो भी हम इस बारे में उससे बातचीत नहीं कर सकते हैं।

8. लाम्बड़ी वटीए कोठे देयी लीया घेरा।
तू ला बिहा दुलकी हा लाऊ गीयो रा फेरा॥

भावार्थ :—लड़का नवयुवती मादरी को कहता है—कि तेरी लम्बी गर्दन जब हिलती है तो तू मुझे बहुत अच्छी लगती है अर्थात मन को बहुत खुशी होती है। वह मादरी को फिर कहता है कि हे मादरी तुम ढोलक बजाओ तथा मैं तुम्हारी ढोल की लय में नाटी लगाऊंगा तथा गीत गाऊंगा।

9. चांदी रा छालीटा हुला गूटी रा घेरा।
उड़ा देई बिहा मादरो साईरी रूपीया मेरा॥

भावार्थ :—जब वह सुन्दरी उससे शादी करने को तैयार नहीं होती तो फिर वह लड़का उससे सम्बोधित करते हुए कहता है कि जो चांदी का छल्ला (अगूठी का घेरा) मैंने तुम्हें सगाई के तौर पर दिया था तथा वह रुपया जो साई (सगुन) के तौर पर दिया गया था, इन चीजों को मुझे वापिस कर दो अर्थात अगर तुम मेरे साथ शादी नहीं करना चाहती हो तो मेरा दिया हुआ चांदी का छल्ला (अंगूठी) वापिस लौटा दो।

10. आच्छी लाई रे ढुलकी मुन धुमला मेरा।
लूकों देणा बुलणो उमो आसरा तेरा॥

भावार्थ :—इधर फिर वह सुन्दरी मादरी ढोलक बजाती हैं तथा लड़का उससे कहता है कि तुम ढोलक को इतती अच्छी तरह बजाना कि मेरा मन झूम उठे। इसी प्रकार वह फिर कहता है कि लोग हमारे बारे में जो कहते हैं, उनको कहने दे, तू उनकी परवाह मत कर। हमें तो आपस में एक दूसरे का आसरा और सहारा है।

11. फूलों कोरो फूलटू डाली फूला पाजा।
मादरी रा आया मिलारू कुल्लू कालसी रा राजा॥

भावार्थ :—इसके बाद वह लड़का फिर मादरी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि जिस प्रकार पाजा के पेड़ पर प्रफुल्लित फल कोमल होते है. मेरा मन भी उसी प्रकार कोमल है तथा कहता है कि मैं राजवंश से सम्बन्ध रखता हूं और तुम्हारे साथ शादी करना चाहता हूं।

12. ठेका लिया घोरे रा ठेका बेने माजा
चूटी रोई थी मावटा इंदा चेइया माजा।

भावार्थ :— इसके प्रत्युत्तर में लड़के को मादरी कहती है—कि आपके घर वाले यहां पर शादी करने के लिए इन्कार कर रहे थे तथा उनके मना करने के वावजूद भी आप यहां पर चले आए हैं। जब तेरी और मेरी मोहब्बत टूट चुकी थी फिर तुम्हें शादी के लिए नहीं आना चाहिए था।

13. उवी धारो चूड़ी री वदी विदरा वूणी।
लूँडी आया (बिजलू) शीरो भोस्मा पूणी ॥

भावार्थ :— ये पंक्तियां इस लोक गीत को आपस में मिलाने के लिए गाई जाती है तथा भावार्थ ये है—कि बिजलू नाम का एक व्यक्ति जो साधू का झूठा वेश धारण करके उसको धोखे में रख कर उससे शादी करना चाहता है।

14. लाई दीता साधे वीरो दा कोदीरा रा वाजा।
देंदा बेने कुए भी चीया आती ने मोहल्लो दा राग ॥

भावार्थ :— जब वह साधु उस राज्य के महल में फकीर बन कर आया तो उसने अपनी वीणा वजानी शुरु कर दी तथा उसकी वीणा को सुनकर महल की दासियां कहती हैं कि हे साधु जी, इस महल का राजा अभी बाहर गया हुआ है अतः आपको भिक्षा नहीं दी जा सकती।

जिला भाषा अधिकारी
बिलासपुर

बैद्यनाथ (बैजनाथ) शिव मन्दिर व आस-पास के धार्मिक स्थल

—सुदेश दीक्षित

हिम के आंचल में बसा छोटा सा प्रदेश (हिमाचल) प्राकृतिक सौंदय की खान, जहां एक ओर स्वस्थ्य की दृष्टि से सर्वोपरि वहीं दूसरी ओर इसमें भगवान कण-कण में निवास करते हैं। भोले-भाले लोगों के सच्चे मनों की श्रद्धा भगवान में आस्था ही इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। वैसे तो हिमाचल में कई तरह के देवीं-देवते निवास करते हैं यथा, नैणा देवी, काली बाड़ी माता, त्रिलोक नाथ, रिवालसर झील, मणीकरण, भूतनाथ मन्दिर, माता महेश्वरी देवी, माता सिमसा, नागेश्वर महादेव (नगुलिया महादेव) माता चामुण्डा, ब्रजेश्वरी माता (कांगड़े वाली माता), बगला मुखी माता, माता ज्वाला मुखी मनीमहेश इनके इलावा भी असंख्य हैं अगर लिखना चाहे तो एक बड़ी किताब नामों की लिखी जा सकती है। इसी प्रकार जिला कांगड़ा में बैजनाथ नामक स्थान पर भगवान शिवजी का पुरातन मन्दिर इस मन्दिर के दाहनी ओर कल-कल बहती नदी बिनवा है तो दूसरी ओर भव्य सुन्दर बैजनाथ शहर। इस क्षेत्र के अन्य धार्मिक स्थली का वर्णन करने से पहले इस मन्दिर का वर्णन करना श्रेष्ठ है। इस मन्दिर के बारे में बहुत सी किम्वदतियां है। कई लोग कहते हैं कि पुराने समय में वहां खेत थे और किसान हल जोत रहा था कि हल के फाले से पत्थर (शिव लिङ्ग) फट गया और तभी से इसका निर्माण हुआ।

कुछेक लोग कहते हैं कि इस मन्दिर का निर्माण पांडवों ने किया था। सिर्फ एक रात में ! कुछेक लोगों का विचार है कि यहां पर रावण ने घोर तपस्या की थी। इसी के प्रति जानने व लिखने की लग्न थी। मैं इस क्षेत्र के एक वृद्ध से मिला तो उसने बताया कि यह मन्दिर लगभग 1500 वर्ष (जैसा हम बजुर्गों से सुनते हैं) पुराना है।

भगवान शिव का रावण बड़ा उपासक था। एक बार की बात है कि उसकी भक्ति से शिव प्रसन्न हो गए और वर मांगने को कहा तो उसने पहले वचन लिया जब भगवान शिवजी ने वचन दे दिया तो वह बोला, "भगवान मैं आप को लंका ले जाना चाहता हूं। शिव असमंजस में पड़ गए कि यह गलत हुआ परन्तु बोले, "ठीक है परन्तु मेरी भी एक शर्त है कि अगर तू मुझे कहीं जमीन पर नहीं रखेगा तो मैं चल पड़ता हूं।" रावण शर्त मान कर लिंग को थैले में डालकर चल पड़ा। ज्योंहि वह इस स्थान से गुजरने लगा तो उसे लघुशंका तेज हो गई। पास से गुजर रहे एक ब्राह्मण (जो विष्णु थे) को थैला पकड़ा कर और जमीन पर न रखने को मना कर स्वयं लघु शंका करने लगा। परन्तु जब

वह वापस आया तो उस ब्राह्मण ने थैला नीचे रख दिया था। पूछने पर वह बोला कि मुझे थैला भारी लगा और मैं ज्यादा देर तक नहीं उठा सका इतना कह कर ब्राह्मण थोड़ी दूर जाने के बाद लोप हो गया। रावण समझ गया कि मेरे साथ छल हुआ है तभी से वह वहां तपस्या करने लगा। मन्दिर के कुछ दूर शहर व पपरोला को मिलाने वाली एक पगडण्डी है वहीं पर एक छोटा सा मन्दिर है। कहते हैं रावण वही बैठा बैठा भक्ति करके सुबह-शाम मन्दिर में फूल अर्पण करने आता था। अन्तत: भक्ति करते-करते शिव जी खुश न हुए रावण ने हवन कुण्ड जो मन्दिर के बाहर है, में अपने नौ सिर होम कर डाले थे परन्तु जब दसवां सिर काटने लगा था तो भगवान ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि तुम्हारी मृत्यु मर्यादा पुरुषोतम परशुराम भगवान राम से होगी। वरदान पाकर लंका वापस आ गया।

यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि गत वर्ष पहले यहां स्थानीय लोगों द्वारा दशहरे का आयोजन (मन्दिर के बाहर पार्क में) किया जाता था परन्तु दशहरे के बाद या पहले मान्य व्यक्ति की मृत्यु हो जाती थी। भगवान शिव का कोप मानकर तब से रावण का पुतला जलाणा बन्द कर दिया है।

मन्दिर में हर तरह की पुरातन चित्र कला है। चार दीवारों में मूर्तियां हैं। मन्दिर के अन्दर बाहर असंख्य देवताओं की प्रतिमाएं हैं मात्र एक स्तम्भ को छोड़ कर मन्दिर के प्रत्येक पीलर पर कलाकारी की गई। प्राकृतिक कोप का भी इस पर कम ही असर हुआ है। मात्र 1905 में भूकम्प में एक दरार आई जिसे बाद में ठीक कर दिया गया है। मन्दिर में स्थित लिङ्ग दो भागों में बटा है। जो कि पार्वती तथा शिव का इकट्ठा रूप है। इस तरह का सम लिङ्ग कहीं नहीं है इस लिङ्ग के आस पास वाली जगह खाली है जहां पर अब कपड़ा लगा दिया जाता है। नहीं तो इस पर डाला गया पानी मन्दिर के नीचे चरणामति कुहल से निकलता है। (ऐसा कहते हैं) मन्दिर के अन्दर दोनों तरफ दो संगमरमर की प्लेटे लगी हैं उन पर लिखा गया है मन्दिर के प्रांगण में शिव ब्रह्मा नन्दीगण की प्रतिमा है जिसकी पीठ पर भी दाहनी ओर अंश खुदे हैं। गत वर्षों से इस मन्दिर को पुरातत्व विभाग ने अधिग्रहण कर लिया है और इस की सुन्दरता और आकर्षण को बढ़ाने हेतु बाहर वाली जगह को पार्क के रूप में बदल कर चारों ओर नाना प्रकार के फूल लगाए गए है।

इसी शहर में एक अन्य मन्दिर देखने योग्य है माता तारा देवी व इसी के साथ नव निर्मित केदार नाथ का मन्दिर।

शहर के निचली तरफ़ आंए तो एक पुराना मन्दिर सिद्ध नाथ है। यहीं से रैस्ट हाऊस रोड़ पर माता चामुण्डा का नव-निर्मित मन्दिर है जिसके निर्माण में बाबा चन्द्रशेखर जी का बड़ा योगदान रहा है। बैजनाथ से नीचे की तरफ बैजनाथ-चौबू-चौतीन मार्ग पर यहां से 5 कि० मी० की दूरी पर महाकाल का मन्दिर है। बहुत ही पुराना मन्दिर है इस मन्दिर के आसपास वाली जगह पर भवन निर्माण कार्य चल रहा है कुछ पूरा हो चुका है। इस निर्माण में यहां पर रह रहे युवा स्वामी का बहुत ही योगदान एवं आस पास वालों का सहयोग। इस मन्दिर के बारे में दन्त कथा है कि पहले जब कभी इस पवित्र तीर्थ में कोई शव जलाने को नहीं आता था तो दोपहर को घास का एक गट्ठा (पुला) जलाया जाता था। ऐसा देवता को खुश करने को किया जाता था। परन्तु अब ऐसा नहीं है।

तत्तापानी :

बैजनाथ के साथ ही पहाड़ी के आँचल में एक और पवित्र तीर्थ स्थल तत्ता पानी है। यहां एक गर्म पानी का चश्मा है जो कि लूणी नदी के बीच में हैं। इस स्थान पर निर्जला एकादश के दिन पवित्र स्नान का त्यौहार होता हैं लाग एक दिन पहले ही टोलियों में पहुंच जाते हैं। दूसरे दिन सुबह स्नान करके वापस आ जाते हैं फिर सारा वर्ष यह जगह वर्फ से ढकी रहती है। अगर पर्यटन विभाग इसे अपने पास अधिग्रहण करले तो यह स्थान पर्यटक स्थल बन सकता है। और अगर पुरातत्व विभाग भी इस को ग्रहण कर ले तो इस पानी पर खोज कार्य किया जा सकता है क्योंकि इसके पानी में गन्धक के टुकड़े निकलते हैं। इस स्थल की यात्रा का शुभारम्भ बैजनाथ शिब-मन्दिर से होता है और समापन महांकाल के दर्शन के बाद होता है।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात हो जाता है कि बैजनाथ जैसे छोटे से शहर के आसपास कितने देखने योग्य स्थल हैं। हिमाचल सरकार अगर इस शहर को भी पर्यटन नक्शे में दर्ज करके पर्यटन विभाग को सौंप देती है तो दर्शकों के साथ-साथ सरकार को आय भी हो सकती है। सर्दियों के दिनों रुई की तरह गिरती बर्फ को देखने का भव्य आनन्द प्राप्त होता है।

पंडतेहड़ (बैजनाथ)
कांगड़ा (हि. प्र.)

हाटेश्वरी मन्दिर की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

—मस्त राम चौहान

इतिहास की पर्तें ज्यों-ज्यों शोध और खोज के द्वारा एक के बाद एक-एक करके उठती रहती हैं और पढ़ने के लिए पाठकों के सामने आती जाती हैं त्यों-2 अतीत की खोज के विषय में एक नये आकर्षण स्वयंमेव उत्पन्न होते ही रहते हैं। मेरी पूर्व रचना "हाटेश्वर मन्दिर और जनश्रुतियां" ही इसके दबे पड़े पौराणिक इतिहास की परतें कुरेदने मात्र काम आई। जिसमें भस्मासुर से लेकर विगत 19वीं शताब्दी तक के इतिहास की झिलमिलाती झलक देखने को मिली है। जिसमें हाटकोटी नगर के उत्थान और पतन तथा देवी शक्ति महिमा का वर्णन है। हाटकोटी मन्दिर का पौराणिक इतिहास शोणितपुर (सराहन-रामपुर बुशैहर) से काफी सम्बन्धित है। द्वापर काल में कुलूत देश के अठारह करडू देवताओं बुशैहर भूखण्ड के चार भाई महेश्वरों और अनेकों नाग देवताओं का काफी वर्णन मिलता है। यक्ष किन्नर—दानव—दैत्य आदि प्रजातियां भी कलूत देश, बुशैहर, कलिन्द आदि प्रदेशों में पाई जाती थी सबसे अधिक महिमा भीमा काली (चंडिका) देवी की रही है। इन देवी देवताओं की मान्यता खश, कनैत, किन्नर और नाग आदि जाति के समुदाय के लोगों ने दी थी। जिसका वर्णन पुराणों और ब्राह्मण ग्रन्थों में आज भी पढ़ने को मिलता है।

वास्तव में मातेश्वरी हाटेश्वरी की व्युतपत्ति की महिमा अपने आपमें एक अदभूत आकर्षण एवं गूढ़ रहस्य धारण किए हुए हैं। द्वापर युग में कलिन्द (सिरमौर और वर्तमान जिला महासू का दक्षिणी भाग) कलिन्द और बुशैहर तथा कुलूत देश के उत्तरी भाग पर वाणासुर नामक असुर राज का राज्य हुआ करता था। यह राज्य तत्कालीन समृद्धि और शक्ति की दृष्टि से अपने आप में एक महत्व शाली राज्य माना गया था। राजा वाणासुर महेश्वर (शिव) का अज्ञात उपासक था। उसकी अपनी शक्ति पर बहुत ही अभिमान था उसने अपनी शक्ति के द्वारा देवताओं और यक्षों किन्नरों को अपने पराक्रम से ध्वस्त कर रखा था। उसको उनके ईष्ट महेश्वरों का विशेष वरदान प्राप्त था कि वह अजय रहेगा। द्वापर युग में महेश्वर सम्प्रदाय का काफी प्रभाव था। यह चार भाई थे। इनकी एक बहिन थी जो शुआ चण्डीका के नाम से आज भी प्रसिद्ध है। चार भाई महेश्वरों में देवता महेश्वर जो कि पुजारली (समरकोट) तहसील रोहड़ू में प्रतिष्ठित है सबसे बड़ा था जिसका क्षेत्र नोगली खड्ड से जोनसर—बावर तक था। उससे छोटा सुंगरा महेश्वर जो नोगली खड्ड से ऊपर और वागनू से नीचे के क्षेत्र का ईष्ट माना जाता था। तिसरे स्थान पर भावा महेश्वर जो भावा क्षेत्र का था। चौथा स्थान चिगांव महेश्वर का था जो चौगांव से मोरतक का स्वामी था। शुआ चण्डीका का क्षेत्र कोठी गांव से तिब्बत की सीमाओं तक सर्वत्र फैला था। इन सारे क्षेत्रों के ईष्टों का वाणासुर पर आशीर्वाद था।

एक दिन वाणासुर ने अपने ईष्ट महेश्वरों से पूछा कि उसके जोड़ का शक्तिशाली पुरुष संसार में कोई नहीं है। जिससे वह युद्ध कर सके। तब महेश्वर से उसका अंहकार देखा न गया। और उन्होंने उसको चेतावनी देते हुए कहा कि जिस दिन उसके महल पर से पताका स्वयं गिरेगी। उस दिन उसको समझना चाहिए कि उसके जोड़ का व्यक्ति संसार में पैदा हो चुका है।

समय की गति के साथ बाणासुर की राजकुमारी चन्द्रमा की कलाओं की तरह यौवन की ओर अग्रसर होने लगी। एक समय वह भी आ गया जब कामदेव ने उसे सताना प्रारम्भ कर दिया। उसे एक रात स्वप्न में एक अदिव्य प्रतिभावान युवक के दर्शन हुए। वह स्वपन में ही उस पर आसक्त हो गई। ज्यों ही उसकी आंख खुली तो उसने अपने आप को अकेले पाया। वह एक दम से उदास रहने लगी। उसकी उदासी उसकी सखी चित्र लेखा से देखी न गई। चित्र लेखा के पास उस काल का एक सबसे उत्तम यन्त्र था। जिस के द्वारा जिसकी भी कल्पना उसके मन आती उसकी तस्वीर तत्काल बनकर सामने आती। उस तरह वह संसार के हजारों राजकुमारों के चित्र कुछ ही क्षणों में बनाकर राजकुमारी के सामने रखतां और पूछती को उन में से कौन सा उसका चितेरा है। परन्तु राजकुमारी नाकारात्मक रूप स सिर हिला देती। अन्त में भगवान श्री कृष्ण के बेटे प्रद्युम्न के पुत्र अनिरूद्ध की छवि सामने आई। जिस पर राज कुमारी की आंखे टिक गई और कहने लगी कि वही उसका चितचोर है।

तब क्या था। चित्रलेखा अपने एक विमान पर बैठकर आकाश मार्ग से द्वारका-पुरी गई। उसका वह विमान जहां चाहों एक छोटी से छोटी जगह पर उतर सकता था। वह पटरानी रूकमणी के महल के आंगन में उतरी और उससे उसके पौत्र अनिरूद्ध को मांगा और फिर से सही सलामत द्वारकापुरी पहुंचने का वचन दिया। श्री कृष्ण की पट्टरानी रुकमणी काल की गति को पहचानती थी: और यह भी जानती थी कि वह बर बाणासुर की बेटी के लिए विघाता ने चुनकर रखा है। उसने चित्र लेखा को स्वीकृति देते हुए वचन मांगा कि यह बात किसी को प्रकट न हो। चित्र लेखा ने पलंग समेत ही सोते हुए अनिरुद्ध को अपने यान द्वारा शोणीतपुर (वर्तमान सराहन) ले आई। राजकुमारी और राजकुमार अनिरुद्ध अमोद-प्रमोद मे इतने लीन हो कि उन्हें अपने वंश कि मान मर्यादा का जरा भी ध्यान न रहा।

इधर एक दिन वाणासुर की दृष्टि अपने महल पर गई तों देखा कि उसकी विजय पताका गिरी पड़ी थी और बात की बात यह समाचार जंगल की आग की तरह फैल गया था कि राज-कुमारी के महल मे कोई सुन्दर युवक बास कर रहा है। फिर क्या था वाणासुर की सेना ने चारों ओर से राजकुमारी का महल घेर लिया। देखते-देखते लशकर पर लशकर प्रमोद में मग्न राजकुमार को युद्ध के लिए ललकारने लगे। श्री कृष्ण का पौत्र होने के नाते कायरों की तरह छुपकर न रहते हुए उसने महल के छंजों पर छलांग भारते हुए एक छज्जे पर पुराने पड़े युद्ध यन्त्र को उठा कर युद्ध करना शुरू कर दिया। बात की बात में सभी बड़े-बड़े याद्धाओं को धराशाई कर दिया। उसका यह पराक्रम देखकर वाणासुर बहुत ही प्रसन्न हुआ और मन ही मन सोचने लगा कि यही उसकी राजकुमारी के लिए उचित वर होगा। परन्तु प्रकट रुप से राज मर्यादा को बनाए रखते हुए उसने अनिरूद्ध को युद्ध करने के लिए ललकारा। देखते-2 ही वाणासुर के छके छुटने लगे और उसने नागपाश चलाकर अनिरूद्ध को बन्दी बनाकर बन्दीगृह में बन्द कर दिया।

चित्र-लेखा को अपना दिया गया वचन जो उसने रुकमणी को द्वारका में दिया था याद आया। उसने अपनी अधिष्ठात्री कुलदेवी भीमा काली (शुआ चण्डीका) का स्मरण किया कि उस पर वचन भंग का पाप लगेगा। वह राज कुमारी और राज कुमार को किसी प्रकार के अनिष्ठ होने से पूर्व ही किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दे। कुल देवी भीमा काली ने बिजली की चमक के साथ आकाशमार्ग से राज कुमार अनिरुद्ध को हाटकोटी के सुन्दर और सुरक्षित स्थान पर ला उतारा और स्वयं भूमि में समा गई। वाणासुर और श्रीकृष्ण को अन्त तक पता न चला कि राज कुमार मुक्त हो चुका है। जब अन्त में भगवान श्री कृष्ण के हाथों वाणासुर परास्त हुआ तो राजकुमार को श्री कृष्ण को सौंपने का बचन देकर बन्दी गृह की तरफ चला तो द्वार खोलने पर राजकुमार अनिरुद्ध को न पाकर आश्चर्य चकित रह गया तभी आकाशवाणी हुई कि राजकुमार अनिरुद्ध हाटकोटी नामक स्थान पर कुशल मंगल है। या द्वारा श्री कृष्ण ने उन्हें सराहन लाया और दोनों का विधिवत विवाह करवा कर उन्हें अपने साथ द्वारका ले गए।

जिस स्थान पर भीमा काली मूर्गभ में प्रवेश किया था। उसी स्थान पर जगदम्बा मां हाटेश्वरी देवी की मूर्ति का भगवान श्री कृष्ण ने अपने हाथों से अनावरण किया था। उसी समय से मां भीमा काली को हाटेश्वरी नाम से ही माना जाता है। यही मां हाटेश्वरी की व्युत्पति की महिमा है। काल और समय के प्रभाव से जब शिवालिक पर्वत माला पर नाग जाती का राज्य था तो कहा जाता है कि नाग राजा ने कामारुप मन्दिर गोहाटी मे कांस्य मूर्ति को लाकर हाटकोटी में प्रतिष्ठित किया था। क्योंकि हाटेश्वरी माता ने उसकी किसी मनोती को पूर्ण किया था, और निरमण्ड जो तत्कालीन कुलत देश का सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि में सम्पन्न नगर था से भगवान परशुराम की प्रतिमा को परिवर्तित करके कामरुपा मन्दिर आसाम में प्रतिष्ठित किया था।

इन सब ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि का शोधआत्मक अध्ययन करके हमें अपने सैंकड़ो अस्त-वस्त ध्वस्त तीर्थ स्थलों का वास्तविक इतिहास ब्रह्मणों ग्रन्थो और जनश्रुतियों तथा वेदपुरानों से शोध करके निखार संवारकर सामने लाना होगा ताकि अस्त-ध्वस्त पड़ी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को एक नई प्रभा और आभा से अलंकृत किया जा सके।

गांव पुजारली डा. समरकोट
तह. रोहड़ू, जिला शिमला (हि. प्र.)

निणू लामण

शशिकान्त शास्त्री

शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा जिसने अपने बड़े-बूढ़ों के मुख से चेतावनी पूर्ण कहावतें या या लोकोक्तियां न सुनी हों। यह दूसरी बात है कि हम में से अधिकांश लोग उस अटपटी भाषा को सुन कर अनसुनी कर दें या उस विषय पर सोचना केवल समय खराब करना समझें पर यह सत्य है कि जरा सा ध्यान देकर सोचने पर ये कहावते बड़े ही गूढ़ रहस्यों से परिपूर्ण साबित होती हैं। हां कभी-कभी तो ये बिल्कुल निरर्थक और असंगत प्रतीत होती है। बुद्धि उन गुत्थियों को सुलझाने में शिथिलता अनुभव करती है। लेकिन धैर्यपूर्वक यदि उनके अर्थ लगायें जायें, तो अन्ततोगत्वा उन्हीं निरर्थक सी प्रतीत होने वाली कहावतों से बड़े ही सार गर्भित अर्थ निकल आते है अब आईये कुछ ऐसी लोकोक्तियों से आपको परिचित करायें। जिसके विषय में मैंने सोचा है, हो सकता है कि मेरे सोचने के अतिरिक्त भी कोई और अर्थ हो, पर मुझे जो तर्क संगत प्रतीत हुए हैं वही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हैं।

पाणी बही नें पीणा—अर्थात पानी बैठकर पीयो एक दिन की बात है कि मुझे खड़े-खड़े पानी पीते देख कर मेरे पिता जी ने डांट के कहा था। मैं उस समय बैठ तो गया पर कारण पूछने की प्रबल जिज्ञासा हुई कि खड़े-खड़े पानी पीने से क्या नुकसान है? लेकिन डर के कारण मैं नहीं पूछ सका और शाम को घर आकर मैंने भी अपनी जिज्ञासा दादी जी के सामने प्रस्तुत की दादी जी अपने 80 (अस्सी) साल के अनुभवों को समेटती हुई बोली—होता क्या है खड़े-खड़े पानी पीने से दरिद्रता आती है। ऐसा कह कर उन्होने कुछ इस प्रकार का मुंह बनाया कि इस उक्ति की सच्चाई पर मानो उन्होंने अपने अनुभव की मोहर लगा दी हो उनके इस पाण्डित्यपूर्ण अर्थ को सुन कर मेरी उलझने सुलझने के बजाय और उलझ गई। मैं सोचने लगा भला खड़े खड़े पानी पीने के साथ दरिद्रता का सम्बन्ध क्या हो सकता है। करीब कुछ दिनों के बाद हमारे रिश्तेदारों में एक वैद्यराज से बातचीत हुई और उनसे यही प्रश्न पूछा कि खड़े "खड़े पानी पीने से क्या नुकसान होता है?" वैद्य जी बोले। पोते बढ़ जाते हैं, और और घुटने कमजोर हो जाते हैं। उनके यह कहने के साथ मुझे उस लोकोक्ति का सारा अर्थ समझ में आ गया कि उसका तात्पर्य क्या है? कहने वाले ने उन शब्दों के माध्यम से क्या कहा है।

उस समय मेरी दशा युद्ध भूमि में पड़े दुर्योधन की तरह थी जो अश्वत्थामा के द्वारा लाये गये पांचों पांडव कुमारों के सिर को पांचों पाण्डवों के सिर समझकर खुश हो रहा था कि सच्चाई जानने पर पश्चाताप की अग्नि में जलने लगा और अपने कृत्यों पर पश्चाताप करने लगा मुझे खुशी तो इस बात

की थी कि इन निरर्थक प्रतीत होने वाले शब्दों का अर्थ कितना सुन्दर और तर्क संगत है और दुख इस बात के लिए हो रहा था कि उन उक्तियों को मैंने बिल्कुल बकवास और कपोल कल्पित कहकर कितना बड़ा अत्याचार किया था यद्यपि इतना कहने के बाद आप भी इसका अर्थ समझ ही गये होंगे। फिर भी इसको स्पष्ट कर देना उपयुक्त ही होगा खड़े-खड़े पानी पीने से घूटने कमजोर हो जाते हैं और पोते बढ़ जाते हैं तो आप ही कहें जिस व्यक्ति का घुटना कमजोर हो जाएगा वह काम धन्धा करने से रहा, काम धन्धे के बिना धनोपार्जन सम्भव नहीं और पूर्व संचित सम्पत्ति वह बैठ कर खा लेगा, कुछ डाक्टरों को देगा तो दरिद्रता ही आ जाएगी इसी रहस्य को किसी-किसी ने सूत्र बद्ध करके कहा है कि खड़े होकर पानी पीने से दरिद्रता आती है।

घरें धूड़ कठेरनी—घर में राख जमा करना। ऋण बढ़ना मैं एक दिन सबेरे का अल्पाहर लेने बैठा ही था कि मेरा छोटा भाई बाहर एक डलिया में रखी हुई राख को वहीं पलट के डलिया लेके जाने लगा, इतने में मेरी श्रीमती घर से निकल कर तपाक से बोली—श्री मान जी ! घर मे राख जमा करने से ऋण बढ़ता है। 24-25 वर्षीय उस सुकुमार मुख से इतने वजनदार और अनुभव पूर्ण शब्द सुनकर मैंने कुछ बिभोर होते हुए पूछा कैसे-कैसे —श्रीमती जी कुछ संकोच करती हुई सी बोली ये तो मालूम नहीं पर माता जी कहती है। मेरी जिज्ञासा अन्तर मन में मुझे कुरेदती रही मैं दिनभर यही सोचता रहा कि घर में राख जमा होने पर ऋण कैसे बढ़ता है।

रोज की तरह शाम को लोटे में पानी लेकर मैं शौच के लिए गांव से बाहर खेतों में गया। गेहूं के एक खेत में मैंने देखा कि कहीं-कहीं गेहूं ऊंचे-ऊंचे हैंऔर अधिक हरे भी हैं मुझे अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया था। ये और कुछ नहीं है बल्कि राख के ढेर थे जिसे किसान वर्षा से पहले खेत जगह-जगह जमा करके रख देता है और वर्षा आरम्भ होने पर खेत मे फैला देता है किन्तु फैलाने पर भी ढेर की जगह पर समानतया कुछ अधिक खाद रह जाती है फलतः वहां की फसल कुछ अधिक हरी और ऊंची होती है मुझे अपने प्रश्न का उत्तर पा करके बड़ी प्रसन्नता हुई और विशेष इसलिए कि प्रकृति ने स्वयं इसका उत्तर दिया था। मैं बड़ा खुश था और झटपट हाथ पैर धोकर अपनी इस सफलता को अपनी श्रीमती जी को सुना कर प्रशंसा का पात्र बनना चाहता था।

अब इसका अर्थ भी देख लिजिए एक कृषि प्रधान देश में गोबर और राख का कितना महत्व है यह कहने की आवश्यकता नहीं। फिर भी यदि किसी किसान के घर राख खेत में न डाल कर घर में ही जमा रहती है तो स्पष्ट है कि उपज कम होगी। वह घर का खर्च सालभर नहीं चला पाएगा। परिणाम स्वरूप ऋण बढ़ेगा इस प्रकार यह सत्य है कि घर में राख गोबर जमा होने से गन्दगी बढ़ेगी और बीमारी फैलेगी इससे भी ऋण बढ़ेगा।

सस्सू दी हीक देहल—"देहलीज सास की छाती" ऐसी कहावतें बहुत बार सुनने में आई कि भूल से वधू देहलीज पर बैठ जाए तो बहुतों का पारा गर्म हो जाता है, अरी-अरी यह तू क्या कर रही है सास की छाती पर बैठ रही है। यह तो बहुत बुरी बात है। इतनी बड़ी हो गई अब वह तो चुपचाप शर्म के मारे स्थान छोड़ देती है न तो कहने वाले को उसका अर्थ और न ही सुनने वाले को। लेकिन इन अटपटे शब्दों में एक गूढ़ अर्थ छिपा रहता है जैसा कि मैंने पहले भी बताया कि कोशिश करें तो उसका उचित उत्तर ढूंढने पर मिल जाता है। कहने का मतलब कि सास दूसरी मां होती है क्योंकि लड़की अपनी एक मां से विदाई लेकर ससुराल में दूसरी मां का आंचल पकड़ती है। इसका उत्तर स्वयं ही मिल गया कि देहलीज में बैठने से आने जाने वाले लोगों को बाधा उत्पन्न हो जाती है। इतना ही नही कई बार व्यक्ति गिर भी जाता है। इसलिए और अनेक अटपटी कहावतें गूढ़ रहस्यों को बताती है। जैसे रात को भोजन खाकर जूठा वर्तन कभी नहीं रहने दिया जाता है, कहा जाता है कि बर्तन रात गालियां देते है। भला सोचने वाली बात है कि वर्तन कभी गालियां दे सकते हैं। ऐसी बात नहीं। वर्षों पूर्व जब अनपढ़ता बहुत थी यह बनाए गए अपने नियम थे जिससे दूसरे व्यक्ति को थोड़ा भय रहे बर्तनों को इसलिए रात को साफ करने के बिना नहीं रखा जाता है क्योंकि सुबह होते ही और बहुत से काम करने होते हैं। "सच कहा है आज का काम कल पर मत छोड़ो" हमारे देश की सभी आंचलिक भाषाओं में ऐसी कहावतें और उक्तियां पर्याप्त मात्रा हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इनका युक्तिसंगत अर्थ निकाला जाए और इससे हम लाभ उठायें।

राजकीय माध्यमिक विद्यालय हारसी बाबा संघोल
जिला कांगड़ा (हि० प्र०)

हलकी भाषा गूढ़ रहस्य

—दया नन्द सरस्वती

कुल्लू जिला के गड़सा नामक स्थान से 3 कि० मी० दूर निणू नामक परम सुन्दर और आकर्षक स्थान पड़ता है। इस स्थान की सुन्दरता चारों ओर घिरी ऊंची-2 चोटियों और अगली तरफ धीमे-2 स्वरों को उच्चारण करती हुई एक छोटी सी कूहल। एक मनमोहक मन्दिर चौड़ा सा मैदान मन्दिर के सामने ऊंचा वृक्ष अपने झुरमुटों को समेटे हैं। इस मन्दिर में जो महर्षि नारद जी, जिनका नाम वेदोपनिषद पुराणों में अग्रगण्य है। रक्षा बन्धन की पूर्व सन्ध्या पर एक मेला लगता है, जिस मेले में लोग देवते की एक छोटी सी सवारी निकालते हैं और विभिन्न वाद्यों को बजाते हैं तथा पूरी रात गयान वादन करते हैं। गाने के विलेष बोल होते हैं और उन बोलों को एक बहुत अच्छे तरीके व लय से गाते हैं। नारद जी के इस जन्म दिवस के उपलक्ष में गाये जाने वाले वे बोल अपनी अनुपम शैली में गाये जाते हैं। इन्हीं नारद के प्रशंसनीय बोल को जो विशेष संगीत से लयबद्ध होकर तथा भिन्न सी गायन शैली में गाए जाते हैं, लामण कहलाते हैं। इन लामणों का इतिहास बहुत पुराना है। ये कब से गाए जाते हैं और कैसे गाये जाते हैं इसका अनुमान मात्र किंवदन्ति अनुसार होता है।

नारद जी इस धरती पर बहुत पहले आए। निणू से ऊपर पुईत ग्राम में एक औरत जून-जुलाई की कड़कती धूप में अपने बच्चे के साथ छल्ली निंदाई कर रही थी। दिन भी बहुत चढ़ आया था बच्चा भी पानी-पानी कह कर मां को तंग कर रहा था। मां कहती थोड़ा ठहर बेटा, थोड़ी सी छल्लियां रही तब घर जाकर पानी पिलाऊंगी। इस सूखी धार में कुछ नहीं मिलता। इस जलजवाजी में वह औरत जब खेत के अन्तिम छोर पर पहुंची तो उसकी खिलणी (निंडाई का विशेष औजार में कुछ लगा। उसने खिलणी जोर से उठाई तो एक अष्ट धातु की मूर्ति उस औजार में लगी और ज्यों ही मूर्ति खिलणी के साथ बाहर निकली साथ ही एक स्वच्छ जल की धार भी निकली। एक तरफ प्यास से तड़फती हुई बेटे की आत्मा दूसरी ओर साफ पानी की लहर आप स्वयं सोचो वह कितनी खुश हुई होगी। वह खुशी से मूर्ति घर ले गई और उसे अपने पति की आज्ञा से उड़द के एक छोटे से बक्से में रख देती है।

हे ....हां . ...ओ..............म्हारे ऋषिआ नारदा तेरी कोण्डी पराणी ओ आगैं निकता नौऊ नुहारा मोहरु ढ़.................... हो...... ..हां ....पिछे जाईरु पाणी ओ हां..................ओ............पिछै जाईरु पाणी ड़................आगे

रक्षा बन्धन की पूर्व सन्ध्या को इस महाऋषि की लामणों को गाया जाता है। हमारे नारद ऋषि तेरी कोंण्डी (धारा) बहुत पुराणी है जहां तूने जन्म लिया है जिस स्थान पर तेरा जन्म हुआ वह पराणी कोण्ढ़ी अर्थात पूर्डर धार के नाम से जानी जाती है। उसी धार (पहाड़ी पर) आगे नौ रुपों वाला मोहरू निकला और पीछे से चश्मे की स्वच्छ धार निकली। हमारे ऋषि वह जल आज भी तेरी अमरता को प्रकट करता है।

वह औरत उसे अपने घर में रखती है। उसका सम्पूर्ण घर धन दौलत से भर जाता है और वह अपने आप को धन्य मानती है।

हे.........., ... हां........................ओ म्हारे ऋषि नारदा-हीगलें रोंगुआ गुच्छा ओ।

हे...........हां............ओ....................

शोऊरा मोहरा म्हारे ऋषि नारदा शौठें री लागली मुच्छाओ।

हे ....हां ....ओ, शौठें री लागली मुच्छाओ।

हमारे नारद जी का लाल रंग से रंगा हुआ मुच्छा है जो अपनी सुन्दरता को और सरसता को प्रकट करता है और उसकी विशेषता अपने आपमें सम्पूर्ण है। हे हमारे नारद ऋषि तेरा 100 के बराबर एक मोहरा ही है और 60 के बराबर मूंछे हैं, जिस मोहरे में आज भी सौ मूर्तियों की भान्ति कान्ति हैं और मूछों की सुन्दरता हैं।

वह औरत अत्यन्त गरीब और दरिद्र थी। वह अपना निर्वाह मांग कर करती थी। जब बहुत दिनों तक यह औरत किसी के यहां मांगने नहीं गई तो वह कहती है कि हमारे घर में एक मूर्ति है वह हमें सब कुछ देती है। जब इस कह-कही में यह बात मारे में फैली तो निणू के शुकू नामक पुजारी ने धारा नामक गांव से एक गुर रखा और वह ही वहां पूजा वगैरह करता था। तब देवता की स्थापना ऊंची चोटी पर एक छोटे से मन्दिर में की गई जो रवणीकन्डा के नाम से जाना जाता है, में हुई धारा नगरी का गुर रोज जब रवणीकन्डा पूजा करने के पीछे को चल कर पुनः धारा पहुंचता था।

हे............आ.........आ.......आ .... म्हारे ऋषिआ हिगले रोंगुआ घाटू।

है ....गूरु बी होला धारा रा म्हारे ऋषि नारदा।

पजीआरा बी होला निणू रा दाठू

हे............................ गाठू

नारद जी का घाठु अर्थात पहनने का चोला लाल रंग का और सुन्दर है, तथा नारद जी का गुर धारा का था और पुजारी निणू का पण्डित था। आज भी लामण इस परम्परा को दर्शाते है कि लामण कितने पुराने हैं और पुरातन इतिहास को अपने-आप में समेटे है।

सम्पूर्ण उम्र जब वह नीणू का पुजारी पूजा करता रहा तो अपने बुढ़ापे में रवणीकन्डा जाकर कहने लगा। देवता अब मैं इस ऊंची धार तक तो पहुंच नहीं सकता परन्तु ऐसी जगह अपना बास बनाओ जहाँ मैं और मेरी पीढ़ी तेरी पूजा कर सके।

इतने में आकाशवाणी हुई जब निणू शमशान घाट पर कल शाम को अपना चमत्कार दिखाऊं तब मेरी पूजा वहीं पर करना, निणू मशथान (शमशान) सम्पूर्ण इलाके की थी। वहां की परम्परा अनुसार हर रोज वहां कुछ न कुछ अवश्य जलाया जाता था या तो मनुष्य का दाह संस्कार होता था या तो एक घास का गठर जलाया जाता था। इसी निणू शमशान घाट पर शाम के समय एक तूफ़ान चला और सारी राख और हड्डियो का नाम तक न रहा और इसी शमशान में एक पत्थर की मूर्ति फूट पड़ी और मकड़ी ने मन्दिर के आकार का चबूतरा अपने धागे से बनाया। तब से उस पुजारी ने निणू शमशान घाट पर पूजा करनी आरम्भ कर दी और उस दिन से आज तक हर रोज सुबह शाम यहां पूजा की जाती है और दीपक जलाया जाता है। यह वही दिन था जबकि नारद जी ने पवित्र भूमि से स्वच्छ जल के साथ अपने आप को उद्भवित किया था।

आज के ही दिन वह लामण एक जन्म दिवस त्यौहार के रूप में मनाया जाता है। नारद मन्दिर के थोड़ी दूर पर नारद जी का वही मुख जो मिट्टी से उत्पन्न हुआ था, रखा जाता है और विशेष अवसर पर उसे खोला जाता है। भोग वगैरह चढ़ाया जाता है। यह भोग को स्वीकार्य रूप में लेता है। रात्रि के चौथे पहर उसे खोला जाता है। यदि भोग का समय न हो या उसे स्वीकार्य न हो तो उसकी रेहरी नहीं निकलती। इसी नारद ऋषि को आज रक्षा बन्धन की पूर्व सन्ध्या पर जो जन्म दिन है, एक सवाली में सजाया जाता है और विभिन्न वाद्यों के द्वारा उसकी सवाली को धारा के गूर की पीढ़ी का कोई भी व्यक्ति उठाता है और निणू का पुजारी उसका साथ देते हैं। उस सवाली को सिर पर रख कर धीरे-2 आगे चलाया जाता है। असंख्य लोग इस अवसर पर आते हैं। वे अपनी तमन्नाओं को लेकर यहां पदार्पण करते हैं और इच्छाओं को पूर्ण हुई समझते हैं। धीरे-2 झांकी नारद के मन्दिर के पास ले जाई जाती है नारद के प्रंशसात्मक गीत जिन्हें लामण कहा जाता है गाए जाते हैं। रात भर गायन-वादन होता रहता है।

वाद्यों की विभिन्न मनमहोक आवाजों के साथ नर-नारियों के सुमधुर कण्ठों का आलाप भी श्रवणीय होता है। जो कि विभिन्न श्रृंगारिक गीतों को भी गाते हैं। सुबह नारद जी का रथ निकाला जाता है और एक विशेष प्रकार के फूल से जो फूल न होकर फूल से भी बढ़कर सुगन्ध रखता है। नारद के रथ का अलंकार किया जाता है वह फूल कौन-2 कहां-2 और कब से लाया जाता है एक इतिहास है। वही औरत जिसे नारद जी की मूर्ति मिट्टी में मिली थी नारद जी के उपकार से एक दिन 60 परिवार वाली धनाढ्य स्त्री बन गई थी जिसके पास अर्थात परिवार में 12 मन सोना रोज लगाने हेतु और 18 मन मेले उत्सवों के लिए था। जब वह अपने परिवार के साथ रवणीकण्ठा से दूसरी तरफ सीस नामक गांव में रह रही थी तो एक बार उसकी बहु को आऊं-2 की अदृष्य आवाज सुनाई दी जब बहुत दिनों तक यह कार्यक्रम चलता रहा और वह कमजोर हुई तो उसने सम्पूर्ण कथा कह सुनाई। अब सब मर्द औरतें इस अदृश्य शक्ति का मुकाबला करने के लिए डण्डे, बन्दूक और लाठियों

से करने वाले थे और वहु ने उसी आऊं-आऊं आवाज के साथ हां कह दिया। वह उसके घर के पिछली तरफ की बहुत बड़ी चट्टान थी जो कि कभी नारद जी के श्राप से चट्टान बनी थी। वह असल में डायन थी।

वह चट्टान धड़ाम से उनके घर के ऊपर गिर पड़ी और वह सम्पूर्ण वंश समाप्त हो गया परन्तु एक लड़का घराट के पास रात को ही गया था। उन औरत ने कहा "हे नारद मुनि मेरा शोहरू लोड़ी बच्चू तो मैं सो वोहणी फूलरा वास आला फूल हर बोरश तेरे जनम दिहाड़ा वै देला"

वह लड़का इस आवाज को सुनकर शीघ्र घर आया और जोर से पुकारने लगा तो उसे अपनी मां की आवाज सुनाई दी कि लामह के दिन ऊपर पहाड़ से "बिना फूल की गन्ध वाला फूल" नारद को लामण के दिन देना वह लड़का वहीं से अपने सम्पूर्ण वंश का नाश समझकर निणू आया और वहीं पर अपना नया परिवार बसाया। उसी की पीढ़ी का आज भी ऊंचे पहाड़ से उसी फूल को लाता है और नारद भी उसे हर वर्ष वरदान देता है। दूर-2 से लोग अपनी इच्छाओं को लेकर आते हैं। अपने-अपने उपहारों को नारद जी के लिए पेश करते हैं। नारद जी के मोहरे में कीलणीं लगा घाव और उसे मेखली के नीचे स्वच्छ जल धार आज भी नारद जी के जन्म के प्रमाण हैं। लामणो-परान्त नारद जी का रथ उस पूर्ववत् पूईण गांव ले जाया जाता है और वहां पर रथ को नचाया जाता है।

हे————हां—————म्हारे ऋषिया————आ————
हां——————————तेरी पगड़ी ऐड़ीओ देंहा————
फेरा खेली नौऊ नूहारी रा जाच पूईण सेरी ओ————
हां——————हां————पूईण सेरी ओ————

अर्थात हे नारद जी तेरी पगड़ी कितनी अच्छी लगी हुई है और तू नौ आकार वाले उस मोहरे से पूईण से सेरी में नाटी खेलना। नारद हर साल उस पूईण सेरी के बाद रवणीकण्ढा जाता है और वहां उन फूलों का अवशेष छोड़ आता है जो नारद जी को उस औरत की सन्तान देती है।

इन्हीं परम्पराओं अनुसार नारद जी हर वर्ष अपने जन्म दिवस लामण को मनाते हैं तथा दूर से आए लोग अपने भाग्य को सरहाते और अपने आप को धन्य समझते हैं। और अन्त में लामण के दिन सभी लोग नारद जी से प्रार्थना करते हैं कि हम पुनः आगामी वर्ष इसी जगह ठीक-ठीक सम्पूर्ण धन्यवाद ऐश्वर्य के साथ आएं और गाते रहें।

हे ....हां...............
छींटारा गोघरू म्हारे ऋषिया दाऊणी लागली लोड़ी।
हाड खरोलूओ म्हारे ऋषिआ वोलदा जागदा होई।
हे............हां.........जागदा होई।

नारद जी की अन्तिम प्रशंसा के साथ हे नारद तेरा चिन्ह बिन्दु सयुंक्त है और उसमें किनारों पर बानारी लगी है। हमारे नारद संसार में कई उपद्रव लगे हैं। इस लिए तू हमारी रक्षा हेतु सतंक रहना और हमेशा जागते रहना ताकि हम पर आई विपति को सम्पूर्ण रूप से टाल सके।

सरस्वती प्रभाकर कालेज
इनर आखाड़ा बाजार कुल्लू

हस्तलिखित साहित्य :

पाँडुलिपियाँ व लेखन प्रक्रिया

—कमल 'व्यासा'

हस्तलिखित साहित्य चाहे किसी भी लिपि भाषा या स्थान का क्यों न हो लेकिन ऐतिहासिक महत्व में प्राचीन सिक्कों एवं अभिलेखों से कम महत्व नहीं रखता। किसी स्थान विशेष की लोक संस्कृति के दर्शन भी हमें हस्तलिखित साहित्य की इन्हीं पाण्डुलिपियों से ही होते हैं, क्योंकि ऐसा कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं जो है कि इन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में देखने-पढ़ने को न मिले।

हस्तलिखित ग्रन्थों में उनके पृष्ठांकन के लिए अलग-अलग प्रकार की संख्यांक लेखन विधि देखने को प्राप्त होती है। ब्राह्मी लिपि में एक से तीन तक के लिए आडी या घसीट संयोग से बनाई गई लकीरें दिखाई जाती रही हैं। इसी तरह से जैन एवं बौद्ध साहित्य के ग्रन्थों में पृष्ठांकन के लिए एक से तीन तक के लिए दाशिमक अंकों का प्रयोग किया जाता रहा है जो कि आज भी प्राप्त हुई पाण्डुलिपियों में देखने को मिल जाता है। कुछ एक पाण्डुलिपियों में संख्यांक सूचक अक्षर ए, द्वि, त्रि, या कहीं-2 एक के लिए 'स्व', दो के लिए 'स्ति' तथा तीन के लिए 'श्री' भी मिलता है। वैसे देखा जाये तो 'स्वास्ति श्री' प्रसिद्ध मंगल वाचक पद भी है जिसका प्रयोग प्रलेखो के प्रारम्भ में भी होता रहा है।

12वीं शताब्दी के एक जैन टीकाकार मलयगिरि ने 4 के चिन्ह के लिए 'ड्क' शब्द का प्रयोग बताया है। इसी तरह से 5 के लिए 'तृ' या तॄ' का भी प्रयोग किया जाता था, कुछ एक अन्य शब्द भी दूसरे अंकों के लिए प्रयोग किए जाते थे।

सांकेतिक शब्द :

ज्योतिष और गणित की हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में लम्बे-2 अंकों के लेखन के लिए भी कुछ एक सांकेतिक शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। इन प्रयोग किये गये शब्दों में अंगों, छंदों, चरणों देवताओं, ग्रहों व नक्षत्रों का प्रयोग अधिक देखा जा सकता है, जैसे 0, के लिए गगन, आकाश आदि, 1 के लिए इन्द्र, चन्द्र, भूमि व शशि आदि। इसी तरह से अन्य अंकों के लिए भी अलग-2 से सांकेतिक शब्द देखने-पढ़ने को मिल जाते हैं। इसी प्रकार के ही सांकेतिक शब्द मण्डी, कुल्लू, चम्बा व इस प्रदेश के अन्य क्षेत्र से प्राप्त हुई पाण्डुलिपियों में देखे जा सकते हैं।

पाण्डुलिपि अलंकरण :

पाण्डुलिपियों को आकर्षक बनाने हेतु एक प्रकार की स्याही व रंगों का प्रयोग किया जाता था तथा इन्हीं पाण्डुलिपियों के पृष्ठ भी अलंकरण के साथ ही साथ कई एक रंगों से भी रंगे जाते थे। पृष्ठ के चारों तरफ यानि लेख के बाहर की तरफ भी सुन्दर चमकदार रंगों से हाशिया तैयार किया जाता था। इस प्रकार की कई एक पाण्डुलिपियां आज भी मण्डी के हिमाचल लोक सांस्कृतिक संस्थान में देखी जा सकती हैं। कुछ एक प्राप्त पाण्डुलिपियों में सुन्दर-सुन्दर चित्र भी देखने को मिल जाते हैं जैसे कि चित्रमयं गीता, रास चन्द्रिका व दुर्गासप्तशत आदि। प्राप्त गीता की पाण्डुलिपि में अलग-2 आगों के वृतान्त के साथ 24 सुन्दर रंगीन चित्रों का चित्रण भी देखा जा सकता है।

पाण्डुलिपि लेखन प्रक्रिया :—

प्रदेश से प्राप्त हुई पाण्डुलिपियों में दो प्रकार की लेखन प्रक्रिया देखने को मिलती है यानि पृष्ठ के एक तरफ को सीधा करके लिखा गया है तो दूसरी तरफ उसी पृष्ठ में उल्टा लिखा मिलता है। इस प्रकार की पाण्डुलिपियों के पृष्ठ पुस्तक रुप में बन्धे नहीं होते बल्कि खुले ही एक दूसरे के ऊपर रखे होते हैं, जो कि पढ़ती बार अपने आप ही सीधे आते जाते हैं। दूसरी प्रकार की पाण्डुलिपियों में लेख दोनों तरफ सीधे ही लिखे मिलते हैं, तथा इस प्रकार की पाण्डुलिपियों के पृष्ठ पुस्तक रूप में बन्धे रहते हैं। पृष्ठांकन पृष्ठ के केवल एक तरफ ही या तो पृष्ठ के ऊपर की तरफ या फिर पृष्ठ के बांई तरफ के सिरे या मध्य की तरफ किया गया होता है। पाण्डुलिपि के विषय या आध्याय को स्पष्ट करने के लिए पृष्ठांकन के साथ ही साथ उस विषय या अध्याय के शीर्षक का प्रथम अक्षर भी हर पृष्ठ पर लिखा हुआ मिल जाता है।

पाण्डुलिपि के विषय व अध्याय को आकर्षक बनाने हेतु विषय या अध्याय को शुरू करने से पूर्व मंगल कामना के साथ शुभकारी श्लोक भी लिख दिए जाते थे। जहां पर सम्वाद बदलता हो, वहां स्याही का रंग बदल कर (लाल रंग की स्याही से) अगले कर्त्ता के सम्वाद को नाम सहित शुरू किया जाता था, ताकि विषय रुचिकर बना रहे।

पाण्डुलिपि के गलत अंश को काटने के लिए उस अंश को हलदी, की लेई या फिर हरिताल पोत कर ढक दिया जाता था। इसी तरह से छूटे हुए अक्षर या शब्द को दिखाने के लिए छूट के स्थान पर खड़ा हुआ क्रास बना कर छूटे हुए अक्षर या शब्द को हाशिये या पंक्ति के बीच तना कर दिखा दिया जाता था। छूट शब्द या अक्षर के लिए प्रयोग किए जाने वाले इस चिन्ह को काकपद या हंस पद के नाम से जाना जाता था। कहीं-कहीं हंसपद या काकपद के स्थान पर स्वस्तिक का चिन्ह भी मिलता है।

प्राप्त पाण्डुलिपियों में प्रयोग सामग्री :—

इस प्रदेश से प्राप्त हुई पाण्डुलिपियों में ताड़पत्र, भोजपत्र, कागज व रेशमी कपड़े का प्रयोग आम देखने को मिल जाता है। इसी तरह की कुछ एक पाण्डुलिपियां मण्डी के भिन्न-2 क्षेत्रों से प्राप्त हुई हैं, जो कि आज भी यहां के हिमाचल लोक साँस्कृतिक संस्थान में देखी जा सकती हैं। इन प्राप्त पाण्डुलिपियों में देवनागरी (हिन्दी, संस्कृत), टांकरी, गुरमुखी तथा फारसी लिपि की कई एक पाण्डु-लिपियां देखी जा सकती है; जो कि कला, साहित्य, वाणिज्य, राजनीति शास्त्र, गणित, ज्योतिष शास्त्र वास्तु शास्त्र, रासायन शास्त्र शिक्षा शास्त्र, धर्म शास्त्र, नीति शास्त्र, दर्शन शास्त्र तथा तन्त्र-मन्त्र व यन्त्र विषय से सम्बन्धित हैं।

इस तरह देखने से पता चलता है कि साहित्य का कोई भी ऐसा क्षेत्र अछूता नह बचता जो कि यहां से प्राप्त होने वाली पाण्डुलिपियों में न आया हो। चाणक्य की राजनीति व पाणिनि तथा पातंजलि के व्याकरण की पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपियां भी यहां में प्राप्त हो चुकी हैं जिनसे भाषा विज्ञान के साथ ही साथ लिपि शास्त्र की भी जानकारी हो जाती है।

अन्त में कहा जा सकता है कि पाण्डुलिपि चाहे किसी भी विषय या लिपि की क्यों न हो लेकिन उसकी तह तक पहुंचते-2 बहुत कुछ हासिल किया जा सकता है। यही बात इस मण्डी क्षेत्र से प्राप्त होने वाली पाण्डुलिपियों पर ही नहीं लागू होती बल्कि प्रदेश से प्राप्त होने वाली सभी पाण्डुलिपियों से भी हो जाती है जो कि एक इतिहासकार के लिए अथाह ऐतिहासिक भण्डार भी कही जा सकती है।

गांव व डाकघर पनारसा
जिला मण्डी (हि. प्र.)

—•—•—

उत्तरी भारत का लोक देवता-गूगा

— डॉ० दिनेश चन्द्र अग्रवाल

बहुत प्राचीन काल से आस्था, शकुन, मांगल्य तथा मनोकामनापूर्ति के लिए अनेक देवी देवताओं की मान्यता समाज में रहती आयी है। इन लोक पूजित देवताओं में गूगा का भी स्थान बहुचर्चित रहा है। यह देवता लोक समाज में गोगा बीर, गुग्गा पीर, जाहिर पीर, जाहर दीवान, बागड़ा वाला, मुंडलीख तथा अन्य नामों से जाना जाता है। गूगा का सम्बन्ध नाग पूजा से रहा है। भारतीय संस्कृति के विदेशी विद्वानों में से सर डेंजिल इब्वेत्सन तो इस देवता को नाग देवताओं में सबसे बड़ा मानते हैं। हिमाचल प्रदेश, पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के लोक समाज में गूगा की पूजा की जाती है और मेलों का आयोजन बहुत समय से होता रहा है। भादों मास के कृष्ण पक्ष (बदी) की नवमी के दिन को 'गूगा नवमी' कहा जाता है और तभी गूगा की पूजा की जाती है तथा मेले लगाए जाते हैं। कई स्थानों पर यह कार्यक्रम भादों के शुक्ल पक्ष (सुदी) की चतुर्दशी 'अनन्त चौदस' के दिन किए जाते हैं। अन्नत चौदस का सम्बन्ध मूलतः नागोपासना से रहा है।

गूगा के विषय में इधर-उधर कई लोक कथाएं प्रचलित रही हैं, किन्तु प्रामाणिकता के अभाव में कोई निश्चित धारणा नहीं बन सकी है। कहा जाता है कि किसी समय वीरों की जन्मभूमि राजपुताना में स्थित बागड़ रियासत के राजा गूगा एक वीर योद्धा थे, उनकी रगों में चौहान वंश का रक्त लहराता था तथा वह राजा पृथ्वीराज चौहान के समकालीन थे। वह अपने पैंतालिस पुत्रों तथा साठ भतीजों के साथ महमूद गजनी का सामना करते हुए रणभूमि में वीर गति को प्राप्त हुए थे। ऐसी ही एक अन्य कथा में उनको मुगल राजा औरंगजेब का समकालीन बताया जाता है। एक अन्य जानी-मानी लोक कथा के अनुसार किसी समय उत्तर प्रदेश के जिला सहारनपुर में स्थित उपनगर सरसावा में गूगा की माता रानी बाछल अपनी बहन काछल के साथ रहती थी. एक प्रसिद्ध सन्त बाबा गोरखनाथ ने उसके क्षेत्र में अपनी धूनी लगायी। सन्त की प्रतिभा व ज्ञान आदि से प्रभावित होकर दोनों बहनें उसकी सेवा करने लगी। यद्यपि काछल गोरखनाथ से गुप्त प्रेम करती थी किन्तु फिर भी बाछल की सेवा व भक्ति से वह सन्त प्रसन्न हो गये तथा बाछल को एक फल प्रसाद रूप में दिया जिसे खा लेने पर बाछल ने 'गूगा' को जन्म दिया। उधर काछल ने दो जुड़वां पुत्रों (अर्जन तथा सर्जन) को जन्म दिया कालान्तर मे किसी बात पर दोनों भाइयों ने विश्वासघात करके अपने मौसेरे भाई गूगा पर घातक आक्रमण कर दिया किन्तु गूगा ने दोनों को मौत के घाट उतार दिया। जब माता बाछल को इस बात की सूचना मिली तो उसने अपने पुत्र गूगा को श्राप दे डाला जिसके फलस्वरूप वह पृथ्वी में समाधिस्थ हो गया, इससे गूगा की विधवा पत्नी बहुत दुखी रहने लगी माता बाछल से पुत्रवधू का दुःख

देखा न गया तो उसने गूगा को अर्द्धरात्री में अपनी पत्नी से जीवित रूप में मिलने की अनुमति दे दी। पति पत्नी के इस आश्चर्यपूर्ण सम्मेलन में गूगा के घोड़े जवादिया (इसे निला भी कहा गया है) ने विशिष्ट भूमिका निभायी थी, क्योंकि जब गुगा अर्द्धरात्रि में मानवी रुप धारण कर लेता था तो जवा दिया उसको उसकी पत्नी के पास ले जाता था ऐसा भी कहा जाता है कि समाधिस्थ दशा में ही गूगा ने सर्प-शक्ति सिद्ध कर ली थी जिसके द्वारा वह सर्प-रूप धारण करके अपनी पत्नि (सुरैल, सिरियाल, सुरजिला या छरियाल,) से मिलने निकल पड़ता था तथा रात्रि में उसे सर्प समझ कर कोई उसका मूल रूप नहीं जान पाता था। पत्नी के पास जा कर वह अपना मूल रूप पुनः धारण कर लेता था और बाद में पुनः सर्प का ही रूप बदल कर भूमि में समा जाता था। इसी अवस्था में उसने अपनी शक्ति के दिव्य चमत्कार द्वारा सर्पदंश तथा अन्य कष्टों से पीड़ित व्यक्तियों को जीवन प्रदान किया। तब से धीरे-धीरे लोक समाज में उसे नाग देवता के रूप में पूजा जाने लगा। गूगा से सम्बंधित अधिकांश लोक कथाओं में प्रायः गूगा को नागों से सम्बंधित बताया जाता है। पंजाब के लुधियाना जनपदीय क्षेत्र में तो यह धारणा है कि गूगा मूलतः नाग ही था तथा एक राजकुमारी से विवाह करने के लिए उसने मानवीय रूप धारण कर लिया था। लुधियाना गजटियर में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है। विवाह करने के बाद वह पुनः सर्प रूप में आ गया था। किन्ही-किन्ही कथाओं में गूगा को शैशवावस्था में ही एक कोबरा सर्प के फण को मुंह से चूसते हुए पलने में लेटा हुआ बताया जाता है।

सर्प सम्बंधित अन्य लोक कथाओं में वह सर्पराज बासक (वासुकी) नाग से सम्बंधित बताया जाता है। ऐसा कहा जाता है, कि राजस्थान की बूंदी रियासत के किसी राजा की एक कन्या बहुत रुपवती थी, नाम था उसका सिरियाल, जिसे कहीं-कहीं सुरैल, सुरजिल या छड़ियाल भी कहा जाता है। तब गूगा एक सम्मानित योद्धा थे। किसी अवसर पर गूगा ने परमवीरता से जटिल व घातक क्षणों में बूंदी के राजा की प्राण रक्षा की थी। उसके इस शौर्य तथा स्वामि भक्ति से प्रसन्न होकर राजा ने अपनी कन्या का विवाह गूगा से कर देने का वचन दिया किन्तु बाद में राजा अपने वचन से मुकर गया तथा गूगा के साथ अपनी कन्या का विवाह करना अस्वीकार कर दिया। इस घटना से दुखित होकर गूगा वीर अपना घर-बार छोड़कर वन में भटकने लगा तथा बीन व बांसरी बजा बजा कर इधर उधर घूमने लगा, उसकी बांसरी वादन में कुछ ऐसा सम्मोहन था कि जंगल के पशु, पक्षी तथा सर्पराज बासक नाग भी उसके वशीभूत हो गये। बासक ने गूगा से उसका हाल पूछा। उसकी आपबीती सुन कर बासक नाग ने अपना एक अनुचर 'तातिग नाग' उसकी सेवा में प्रदान कर दिया जो मानव रूप धारण कर गूगा के साथ हो लिया। गूगा ने उसे जादूगरों के देश कारू राज्य के धूप नगर में भेज दिया जहां कुमारी सीरियल एक बार बाग में घूमते हुए, उसे दिखाई पड़ी। उसे देखते ही मानव देह धारी तातिग नाग ने पुनः सर्प देह धारण कर ली। जब सीरियल एक सरोवर में स्नान कर रही थी, तातिग नाग ने उसके पैर के अंगूठे को डस लिया। तत्तपश्चात तातिग ने पुनः ब्राह्मण का रूप धारण कर लिया और स्वयं को सांपों का जादूगर बताया। जब उसे राजा के सामने बुलवाया गया तो उसने राजा से लिखित वचन मांगा कि यदि सिरियल को उसने जीवत कर दिया तो सिरियल का का विवाह गूगा से कर दिया जायेगा। राजा द्वारा हां करने पर उसने कुमारी का विष चूसकर जीवित कर दिया। राजा ने कन्या का विवाह सात दिन में कर देना निश्चित कर दिया। गूगा इतना दूर था कि वह इतने कम समय में वहां नहीं पहुंच सकता था किन्तु नाग कृपा के चमत्कार से गूगा को

विवाह उत्सव में प्रस्तुत कर दिया गया और गूगा से कन्या का विवाह सम्पन्न हो गया। यह कथा पंजाब के कई स्थानों पर कही जाती है।

हिमाचल प्रदेश के चम्बा क्षेत्र में प्रचलित कथा में पंजाब की उपर्युक्त लोक कथा से थोड़ा सा अन्तर है। वह यह है कि जब गूगा के साथ सिरियाल का विवाह करना राजा द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया तो गूगा एक बड़ी सेना लेकर सिरियाल के पिता से लड़ने के लिए निकल पड़ा किन्तु मार्ग में बासक नाग द्वारा उसका विरोध किया गया, क्योंकि बासक नाग भी सिरियाल को पाने का इच्छुक था। अन्त में बासक नाग की सेना पूरी तरह नष्ट हो गई तथा राजा ने सिरियाल का विवाह गूगा के साथ कर दिया। गूगा ने सर्प शक्ति प्राप्त कर ली थी जिसके द्वारा उसने बासक को पराजित किया था। कुल्लू तथा पहाड़ी क्षेत्रों में गूगा की दुल्हन को सूखर नागिन भी कहा जाता है जो बासक नाग की कन्या थी। इधर उधर की क्षेत्रीय लोक कथाओं में थोड़ा-थोड़ा सा ही अन्तर रहता है। लोक समाज में ऐसा माना जाता है कि गूगा की मनौती मान लेने से सांप द्वारा डसा हुआ व्यक्ति फिर से जी उठता है और जो व्यक्ति गूगा का अनादर या उपेक्षा करते हैं, वे गूगा की इस कृपा से वंचित रह जाते हैं। प्राय: गूगा के मठ या मढ़ी में मिट्टि या पत्थरों से बनी अनगढ़ी सी सर्पाकृतियां पायी जाती हैं तथा वही पूजी जाती हैं। उत्तर प्रदेश के सहारनपुर नगर से 3 कि. मी. दूर गंगोह जाने वाले मार्ग पर गूगा की मढ़ी बनी हुई है जिसकी दीवारों पर बड़े आकार में बने हुए भित्ति चित्र दूर से ही दिखाई पड़ते हैं जिनमें गुरू गोरखनाथ, जहार पीवान, गूगा तथा अन्य नामांकित आकृतियां चित्रित हैं। गूगा को नीले रंग के घोड़े पर सवार, हाथ में भाला लिए हुए चित्रित किया गया है।

हिमाचल प्रदेश के जिला बिलासपुर के क्षेत्र में गुग्गा दा ग्रांऊ (गुग्गा का ग्राम) है, इस गांव का यह नाम इसलिए नहीं है कि गूगा यहां का रहने वाला था वरन् क्योंकि गूगा इस गांव का प्रथम देवता बनाया गया था। इस गांव की मठिया में गोरखनाथ, हनुमान, नाग तथा फिथुभडियार की मूर्तियां पूजी जाती हैं, इनमें फिथुभड़ियार गूगा की बहन का पति कहा जाता है। यहां पर गूगा के नाम पर एक बड़ा मेला लगता है। जिला कांगड़ा के बरसर स्थान पर भी गूगा का एक मठ है जिसके विषय में ऐसी आस्था है कि उस मठ की पवित्र मिट्टी को खाने से सर्प द्वारा डसा गया व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है तथा दूर से आने आले व्यक्ति वहां की मिट्टी अपनी सुरक्षा हेतू ले जाते हैं। पंजाब में जिला लुधियाना की दक्षिणी सीमा पर स्थित छप्पर स्थान गूगा का बहुत बड़ा पूजा स्थल बना हुआ जहां भादों मास के शुक्ल पक्ष की चौदस को मेला लगता है तथा लाखों व्यक्ति मेले में आते हैं, मढ़ी के पास ही एक सरोवर है जिसकी मिट्टी अति पवित्र मानी जाती है, यहां आने वाले व्यक्ति अपने पशुओं को एक-एक रात के लिए यहां पर रखते हैं, ऐसा विश्वास है कि यहां पर रहने के बाद पशु पर सांप के काटने का प्रभाव नहीं होता तथा उनको सांप कभी नहीं काटता है। इसी प्रकार सांप द्वारा डसे हुऐ व्यक्ति भी मढ़ी के क्षेत्र में एक रात रहने से ही ठीक हो जाते हैं। छप्पर स्थान के निकट कस्बा रायकोट में भी गूगा की एक अन्य प्रसिद्ध विशाल मढ़ी बनी हुई है। एक छोटा सा सरोवर भी है जिसे रत्तोवाना कहा जाता है जिसके निकट मिट्टी का एक ऊंचा सा टीला है जो सदियों से गूगा के दिव्य चमत्कार के कारण अति पवित्र माना जाता है। कहा जाता है कि उक्त टीले पर घूमते हुए एक वार एक क्षत्रीय कन्या को सर्प ने काट लिया। झाड़ने फूकने वालों ने जब बहुत प्रयत्न किए तो टीले पर ही कहीं से एक विशालकाय नाग प्रकट हुआ तथा अपनी आत्मा को कन्या के मृत शरीर में प्रविष्ट कर,

उसने अपनी मढ़ी बनवाने का आदेश दिया। उसकी इच्छानुसार मढ़ी की आधार शिला रखते ही कन्या जीवित हो उठी। तब से उस स्थान को अति पवित्र तथा सर्पशक्ति से प्रभावित जान कर पूजा जाने लगा। कुछ व्यक्तियों द्वारा ऐसा भी बताया गया कि उक्त कथा में प्रकट होने वाले नाग ने स्वयं को गूगा था तथा मृत कन्या से विवाह करने की इच्छा भी प्रकट की थी। जीवित होने पर कन्या का विवाह नाग की एक मूर्ति के साथ विधिवत कर दिया गया।

हिमाचल प्रदेश के मण्डी जनपद में नाथ जाति के लोग गूगा तथा उसके अन्य प्रियजनों की मूर्तियों पर कोबरा के फन जैसी छतरियां लगा कर घर घर पर गूगा के सम्मान में लोक गीत गाते हुए भीख मांगते हैं। पिछले वर्ष ही लेखक को मध्य प्रदेश में उज्जैन का भ्रमण करते समय गोगा नवमी उत्सव देखने का अवसर मिला, यहां के अनेक हरिजन लोग इस पर्व पर झांकियां सजाकार सड़कों पर शोभायात्रा (जलूस) निकाल रहे थे। यहां के गूगा भक्तों से ज्ञात हुआ कि भूतपूर्व मालवा प्रदेश (मध्यप्रदेश) में गूगा को एक लोक पूजित देवता माना जाता था। प्रायः साधारण लोक समाज के ही लोग गूगा को पूजते आये हैं।

ऐसा भी कहा जाता है कि मुगल शासक औरंगजेब के राज्य काल में गूगा ने मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लिया था तथा बहुतों के दुःख दूर किए थे इसीलिए इनको गुगा पीर या जाहिर पीर कहा जाने लगा था तभी से मुसलमान व्यक्ति भी इस लोक देवता में आस्थावान हो गए। इसीलिए हिन्दू व मुस्लिम दोनों सम्प्रदाय के लोग इस देवता के प्रति सम्मान व आस्था रखते हैं तथा मेले आदि कार्यक्रमों में कंधे से कंधा मिलाकर स्नेह व सद्भाव से सम्मिलित होते हैं।

गूगा की मढ़ी पर छड़ियां चढ़ाई जाती हैं। ये छड़ियां लम्बे बांस की बनती हैं जिस पर मोर के पंख, नारियल, पखां, नीला कपड़ा, लाल सूत की गुच्छी फूल तथा मेवा आदि बंधे होते हैं। गूगा भक्त या नाथ सम्प्रदाय के जोगी ये छड़ियां लेकर घर घर गूगा गाथा गाते हुए दान मांगा करते हैं। गूगा की कथा कोई भी रही हो किंतु समाज के छोटे-बड़े, अमीर-गरीब तथा ऊंची-नीची जाति वाले अनेक व्यक्ति गूगा को लोक देवता मानते आए हैं। गूगा के सामने सब एक हो जाते हैं तथा अपनी अपनी दूरियां भूल कर देवता के सामने नतमस्तक हो जाते हैं।

8-कालिज क्वार्टर्स
प्रदुम्न नगर
सहारनपुर उ. प्र.

कुल्लू के राजा टेढ़ी सिंह एवं उसके वंशज

—डॉ. ब्रह्म दत्त शर्मा

बजीरीरुपी का जागीरदार राय दलीप सिंह पुराने कुल्लू राजवंश का प्रधिनिधि था। लोक प्रचलित श्रुति के अनुसार इस क्षत्रियवंश का प्रणेता शुद्ध सिंह नामक एक युवक राजपूत था। वह हिन्दुस्तान के भिमापुरी के राजा का पुत्र था जिसे निर्वासित कर दिया गया था। एक बार उसे साहसिक यात्रा के दौरान स्थानीय देवी का आशीर्वाद प्राप्त हो गया और वह उसकी सहायता एवं कृपा से लोक-गर्हित ठाकुरों को पराजित कर अपने लिए राज्य स्थापित करने में सफल हो गया। कुल्लू के राजा दलीपसिंह के वंशज भी अपने उद्गम की यही कथा दोहराते हैं। इनके सम्बन्ध में दूसरी जनश्रुति है कि शुद्धसिंह एक बहुत बुद्धिमान तथा शक्तिशाली किसान था और जब भी सांझे लाभ के लिए कार्य करने वाले नेता की आवश्यकता पड़ती थी तो वह सबसे आगे खड़ा हो जाता था। वास्तविकता चाहे कुछ भी हो किन्तु इस बात पर सभी सहमत हैं कि एक शुद्धसिंह नामक व्यक्ति अवश्य हुआ जिसने कुल्लू को रियासत का दर्जा दिया और जिसके वंशज कोली राजा के नाम से तभी से राज कर रहे हैं। बजीरी-रुपी तथा परोल के दरड़नाल क्षेत्र से शुद्धसिंह का सम्बन्ध प्राय: 400 वर्ष पूर्व जुड़ा। पहले तो अधिकार के लिए संघर्ष चला और फिर सम्पन्नता का दौर-दौरा रहा। उसके पश्चात् कुल्लु नरेश पर्वतीय राजनीति का नेतृत्व करने लगे और उनका आतंक सतलुज के पार बुशैहर, लाहौल और ब्यास नदी के नीचे कांगड़ा घाटी तक फैल गया। फिर वे सिक्ख प्रभुसत्ता के आगे झुक गए और सतलुज के उत्तर एवं पश्चिम की सभी रियासतों के साथ लाहौर दरबार से जुड़ गए।

अकबर के समय भी मुगलों ने पहाड़ी क्षेत्रों पर वर्चस्व प्राप्त किया था। परन्तु वे उनके काम में अधिक हस्तक्षेप न करते थे, यदि उन्हें वार्षिक राशि नियमित मिलती रहे। बहादुर सिंह के चार उत्तराधिकारियों के समय में युद्धों एवं सीमान्त झगड़ों की अनुपस्थिति कुल्लू क्षेत्र के राजाओं की मुगलों की अधीनता के बारे में बहुत कुछ बता देती है। राय दलीपसिंह के पास सम्राटों के भेजे आदेशों की नकलें थीं, जिनमें उन्हें कुल्लू के 'भूमिधर' कहकर सम्बोधित किया गया है। यह इस तथ्य का संकेत है कि भारत के मुस्लिम शासक इन छोटे-छोटे रजवाड़ों का कितना आदर करते थे।

कुल्लू के इतिहास में दूसरा अध्याय तब आरम्भ हुआ जब सारहवीं सदी के आरम्भ में मण्डी नरेश से मिलकर राजा जगत सिंह ने 'लाग' क्षेत्र को जीत लिया। लागवलती, कोहार, सवार (छोटा बंघाल) तथा बाह्य हिमालय की उहल नदी की ढलानों का स्वामी था। ये क्षेत्र बाद में मण्डी राज्य के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिए गए और उस समय मण्डी राज्य को 'मण्डीशहराज' भी कहा जाता था। उहल की ढलानें मण्डी नरेश तथा शेष कुल्लू नरेश का भाग

बन गई। शीघ्रबाद कुल्लू का श्री गढ़ तथा नारायण गढ़ पर भी अधिकार हो गया। राजा जगत सिंह के पुत्र विधि सिंह ने लाहौल पर कब्जा कर लिया तथा बुशहर नरेश से ढोल और कंडी भी छीन लिए। उसके उपरान्त उसका पुत्र राजा मानसिंह कर्त्ताधर्त्ता बना तथा उसके समय में कुल्लू का वैभव अपने चरमोत्कर्ष पर था। उसने बुशहर को लूटना जारी रखा और सांगड़ी को अपने राज्य में जोड़ लिया और शिमला क्षेत्रान्तर्गत स्थित कुम्हारसेन तथा कोटगुरु आदि की छोटी रियासतों से वह कर भी लेता था। मण्डी के राजा ने अपने जामाता, बंधाल के अन्तिम राजा पिरथीपाल का वध कर दिया तथा उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। उससे नवाधिकृत राज्य का एक भाग लेकर मानसिंह ने इसे क्षमा कर दिया। इस कार्य से उसने अपने नाम को सर्वदा के लिए कलंकित कर लिया तब वह मण्डी राज्य से उलझ पड़ा और गोमा तथा दरंग की नमक खानों पर अधिकार कर लिया। कई वर्ष तक वह वहां के राजस्व का उपभोग करता रहा। अन्ततः वह कुम्हारसेन के राजा के हाथों मारा गया क्योंकि उसके साथ उसकी सदेव शत्रुता रही थी।

निर्वासित दयाल वजीरों में से एक ने राजामान सिंह के पौत्र जयसिंह के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और यहीं से उसके अपकर्ष का आरम्भ हुआ। यह वजीर परिवार कुल्लू में सदा ही ऐतिहासिक महत्व का रहा है। विद्रोह का परिणाम था जयसिंह को निर्वासित करना और राजा टेढ़ीसिंह को आसनासीन करना। मण्डी के राजा ने इस उहापोह का लाभ उठाया और चोहार घाटी के बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। सभी लक्षण कुल्लू राज्य के खण्ड-खण्ड हो जाने का संकेत दे रहे थे जबकि टेढ़ीसिंह ने सिरधड़ बाजी लगाकर पुनः उस शक्ति को प्राप्त करने का निर्णय किया जो वजीरों के समय में उसके हाथों से सरकती चली गई थी। उसने सभी दयालवंशी तथा उनके अनुगामी एक राजसी भोज पर आमन्त्रित किये। उन्हें औषधमिश्रित शराब खुलकर पिलाई तथा उनका 300 से अधिक की संख्या में बध कर दिया।

इस ढंग से राजनैतिक वातावरण साफ़ हो गया और टेढ़ी सिंह ने आजीवन भर अपनी पैत्रिक सम्पत्ति का उपभोग किया। उसके बाद आया उसका पुत्र प्रीतम सिंह, जिसके काल में मुगल शक्ति क्षीण होती गई प्रदेश में अराजकता के लक्षण उभरने लगे। गोरखे अपने पहाड़ी प्रदेश से निकल पड़े और सतलुज की ढलानों तक पर्वत प्रदेश पर छा गये। उधर सतलुज पार के सभी राजपूत राजा कटोच नरेश संसारचन्द के कर दाता बन गये। कुल्लू के राजा सांगड़ी के लिए गोरखों को तथा कुल्लू के लिए महाराजा संसारचन्द को कर देते रहे। परन्तु उनकी अपनी भोगौलिक स्थिति ऐसी लाभप्रद थी कि उनके लिए कर उगाहना कठिन था और इस प्रकार वे प्रायः स्वतन्त्र ही बने रहे, परन्तु उनकी विपदाएं तो अभी अनेकों थीं। उन्हें शीघ्र ही सिक्खों से निपटना था जो उस समय एक ऐसी सबल एवं संगठित जाति थी कि पहाड़ी राजाओं के जोड़ का कोई भी व्यक्ति उनका मुकाबला नहीं कर सकता था।

सन् 1806 में कांगड़ा गोरखों से आक्रान्त हुआ और हताश मनः स्थिति राजा संसारचन्द ने महाराजा रणजीत सिंह से सहायता मांगी। बिडम्बना यह कि इस रूप में वह अपने तथा कांगड़ा के अन्य राजाओं के मृत्यु आदेश पर हस्ताक्षर कर बैठा था। गोरखे तो निकाल दिए गए। परन्तु अब रणजीत सिंह ने भी पार्वत्य प्रदेशों पर अधिकार जमा लिया। पड़ोसी राजाओं के समान कूल्लू के राजा तथा प्रजा को भी अनेक कष्ट सहन करने पड़े। खालसा का एक अधिकारी कर उगाहने के लिए वहाँ

पर आया और 40,000 रु. लेकर लाहौर लौट गया। तीन वर्ष बाद जब दूसरी मांग की उपेक्षा की तो दीवानचन्द मोहकम चन्द बड़ी सेना लेकर इसे मनवाने के लिए आ बैठा। पचास हजार रुपए की मांग की गई। कुल्लू के राजा ने स्पष्ट कह दिया कि यह उसके साधनों से ऊपर है। परन्तु सिक्ख न माने तथा उन्होंने सुलतानपुर के महल पर अधिकार कर लिया और उसे सुरक्षाहित घने वन्य पहाड़ों में भाग जाने के लिए विवश कर दिया। बाद में अभागे राजा ने किसी प्रकार धन जुटाया तथा आगतुन्कों को लौट जाने पर मनाया। प्रायः इसी काल (1814-15) में अंग्रेजों ने गोरखों को वापिस नेपाल में धकेल दिया तथा गवर्नर जनरल ने सतलुज के इस पार वाले अन्य पहाड़ी राजाओं की भांति उसे भी सांगड़ी सनदसमेत सौंप दी। 1816 में राजा विक्रमसिंह के अवैध पुत्र जीत सिंह ने गद्दी हथिया ली। इस उत्तराधिकारी पर उसके चाचा किशनसिंह को आपत्ति थी। उसने संसारचन्द की सहायता से कटोच प्रदेश में एक बड़ी सेना एकत्र की जिसके साथ उसने कुल्लू राज्य पर धावा बोल दिया। उसे दो बार पराजित कर दिया गया। दूसरी बार मण्डी के राजा ने उसके साथ नीच व्यवहार किया और युद्ध की एक संकटपूर्ण निर्णायक घड़ी में वह दूसरी शक्ति से जा मिला। किशन सिंह को क़ैद कर लिया गया तथा कटोच राजपूतों के कपड़े उतार कर उन्हें नंगा कर पर्वतों में खदेड़ दिया। शीघ्र ही रहस्यपूर्ण स्थिति में किशनसिंह का निधन हो गया।

पड़ोसी राज्य मण्डी के विरुद्ध एक सेना सन् 1839 में जनरल वैन्टूरा के अधीन भेजी गई। इसका मामुली सा विरोध हुआ और राजा को बन्दी बनाकर अमृतसर भेज दिया गया। पहाड़ी क्षेत्र में इतना फ़ुसकर और आगे बढ़ने का अवसर खो देना बुद्धिमता न थी। अतः बहाने के आधार पर कि कुल्लू का उद्देश्य मण्डी की सहायता करना था। एक सेना की टुकड़ी सिंधावालिया सरदार के अधीन कुल्लू को भेजी गई। उसका कोई विरोध नहीं हुआ और राजा को सुहाने स्वप्न दिखाए गए गए। महल और सुल्तानपुर को पुनः एक बार तबाह होने से बचाने के लिए अपने आपको बन्दी बनवा दिया, तब सिक्खों ने नवाधिकृत क्षेत्र में अपनी स्थिति और सुदृढ़ कर ली। सहराज के पहाड़ी किले को शीघ्र हथियाने के लिए राजा को आदेश हुआ कि वह अपनी सेना सहित परेड करे और अपने सभी शुभ-चिन्तकों को हथियार डाल देने की आज्ञा दे। राजा के प्रति सामान्य भद्र व्यवहार भी नहीं किया जाता था और उसके पहरेदार उसकी दाढ़ी तक को नोचते थे। जब भी स्नेहमयी जनता से अन्न धन प्राप्त करना होता तो वे राजा को दुःखी करते। इस क्रूर व्यवहार का कठोर दण्ड भी उन्हें मिला। पहाड़ी लोग अपने ऊपर तो सब प्रकार के कष्ट झेल सकते थे परन्तु राजा के कष्ट देख उनका खून खौल उठा। दयाल परिवार के कपूरू वजीर ने राजा को मुक्त करवाने की योजना बनायी। सभी और सन्देश भेजे गए और चोरी-छुपे सेना तैयार की गयी। सिक्ख सेना में लगभग एक हजार सिपाही थे। अपना काम पूरा करने के पश्चात सिक्ख सेना बसलेऊ दर्रे से सहराज से बाहर जा चुकी थी। टंग दुर्ग से थोड़ा नीचे सड़क जो प्रायः पैदल चलने का रास्ता मात्र थी वनों से घिरे नदी तट के साथ-साथ जाती थी। शहराजी सैनिक यहीं से छुप छुपकर हात लगाकर सिक्ख सेना की प्रतीक्षा करने लगे। सिक्ख एकल पंक्ति में प्रयाण करते आए। उन्हें किसी प्रकार की आशंका न थी। जब राजा के लिए सैनिक शत्रु सामने आए तो एकाएक उन पर आक्रमण कर दिया गया। कुछ लोगों का वध कर राजा को तेजी से ऊपर पहाडों पर ले गए। साथ-साथ ही पूरी पंक्ति में सिक्खों पर गोलियां और पत्थर बरसाए गए। वे डर गए और वापस टंग के दुर्ग में चले गए यहां वे दो दिन ठहरे। परन्तु यहां पर अन्न जल की कमी के कारण बाहर निकलने पर विवश हो गए। पुनः उन पर आक्रमण हुआ और वे धीमी गति से चल पाए।

अन्त में लड़ते हुए वे एक पहाड़ पर चढ़ गए ताकि उन्हें उचित आश्रय तथा अन्न-जल मिल जाए। परन्तु वे पहाड़ी प्रदेश से अनजान थे और खाली, ऊसर, सूखे, कठोर एवं ढलवां पहाड़ियों पर जा चढ़े जहां पैर जमाना भी कठिन था। पानी भी वहां प्राप्त न था। हल्के-फुलके चुस्त पहाड़ी लोग सर्वत्र उनसे ऊपर ही रहते थे। कुछ को उन्होंने पत्थरों से मार दिया और कुछ को सारे क्षेत्र में भेड़ों की तरह घुमाते रहे। इसी प्रकार एक रात बीत गई और शेष बचे सिक्खों को फिर घाटी पर उतारने पर विवश कर दिया गया। कहते हैं कि चार पांच शुद्र जातीय लोगों ने ब्राह्मणों का भेष बनाया और गाय की पूँछ पकड़ कर कहा कि यदि सिक्ख-सेना हाथयार डाल देगी तो उनकी जान बख्श दी जायेगी परन्तु ज्यों ही उन्होंने हथियार डाले। सहराज वाले उन पर टूट पड़े और उन्हें निर्दयता से काट दिया गया। एक दो कर्मचारी जो नियमित सैनिक न थे, छोड़ दिए गए।

यह विजय 1840 की बसन्त ऋतु में प्राप्त हुई। इसका समाचार सुनकर कुल्लू के कुछ लोग सुल्तानपुर के चारों और की पहाड़ियों पर एकत्र हो गए और महल में रखी गयी दोनों रानियों को छुड़ाए जाने का यत्न किया। सिक्ख सेना ने आसानी से उन्हें पीछे धकेल दिया। मुक्त कराया गया राजा अजीत सिंह सतलुज पार संगड़ी में चला गया। उसे ज्ञात था कि सिक्ख प्रतिशोध की भावना से काम करेंगे और यहां वह उनसे बच सकेगा। सतलुज अंग्रेजों और सिक्खों में सीमा-रेखा थी और सांगड़ी अंग्रेजों से राजा को मिला था।

शीघ्र बाद ही एक सिक्ख सेना की टुकड़ी ने सहराज पर चढ़ाई कर दी। परन्तु उसे क्षेत्र बिल्कुल सूना मिला। एक-एक बच्चा ऊंचे वनमंडित पहाड़ों में जा छुपा था। उन्होंने कुछ ग्रामों को लूटा व जलाया तथा तत्कालीन मण्डी नरेश को 32,000 रु. वार्षिक किराये पर वह क्षेत्र देकर वापस चले गए। एक सेना की टुकड़ी कुल्लू में रखी गयी और कर प्रबन्ध के लिए एक कार्यकर्त्ता नियुक्त किया गया। सन् 1841 की शिशिर ऋतु में कैदखाने की दीवारों के नीचे से रास्ता खोदकर उसमें कैद की गई रानियां भाग निकली। जब वे राजा से मिलने सांगड़ी जा रही थीं कि मार्ग में उन्हें राजा की मृत्यु का दुःखद समाचार मिला। यह सितम्बर सन् 1841 की बात है। राजा के साथ सती होने के बजाय वे सुल्तानपुर के महल में आ गयी और उत्तराधिकारी के चयन में व्यस्त हो गईं।

अब सिक्ख इसी परिवार के किसी व्यक्ति को जो अच्छी बड़ी राशि नजराना दे सके, राजा बनाकर हट जाना चाहते थे। महाराजा शेर सिंह जो रणजीत सिंह का दो वर्ष पहले उत्तराधिकारी बना था, पहाड़ों में पर्याप्त समय रह चुका था और पहाड़ों के लोगों के प्रति नर्मी दिखाना चाहता था। जब सांगड़ी में अजीत सिंह का निधन हुआ तो शिमला पहाड़ियों के अधीक्षक मि० इरस्काइव ने शासक पद के लिए मियां जागीर सिंह के पुत्र रणवीर सिंह के नाम का प्रस्ताव किया। जागीर सिंह को एक ओर छोड़ दिया गया था क्योंकि वह मानसिक रूप से अस्वस्थ था। रानियों ने जागीर सिंह के लड़के को सुल्तानपुरी बुलाया और वहां के सिक्ख अधिकारियों ने उसके हक को मान लिया। पदवी लेने के लिए उसे लाहौर भेजा गया परन्तु मार्ग में मण्डी में ही वह बीमार हो गया और मर गया। तब जागर सिंह के बड़े भाई (चाचे के पुत्र) ठाकुर सिंह को बजीरी रुपी की जागीर दे दी गई। उसे पूरे प्रदेश दिया जा रहा था परन्तु वह वृद्ध और डरपोक था। अतः सांगड़ी मोटे दिमाग के जागर सिंह के आधीन ही रहा।

कोई तीन, चार वर्ष, प्रथम सिक्ख युद्ध के बाद सतलुज के पार को क्षेत्र अर्थात जालन्धर दोआबा तथा सतलुज-रावी का मध्यवर्ती पर्वत प्रदेश अंग्रेजी राज्य में मिलाया गया। लाहौल स्पिति सहित कुल्लू कांगड़ा जिला की तहसील बन गया। ठाकुर सिंह को राजा बनाया गया और अपने क्षेत्र में उसे निरंकुश अधिकार थे। सांगड़ी के जागीर सिंह ने भी रियासत पर अपना अधिकार जतलाया परन्तु उसे सलाह दी गई कि जो कुछ उसके पास है उसी पर संतोष करे।

ठाकुर सिंह के निधनोपरान्त सन् 1852 में प्रश्न उठा कि क्या सारी रियासत को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया जाए? उसका कारण यह था कि उसके एकमात्र पुत्र ज्ञान सिंह की माता वैध पत्नी न थी। इसलिए निर्णय यह हुआ कि ज्ञान सिंह को राजा के बदले राय की उपाधि तथा केवल आधी जागीर दी जाए। उसे किसी प्रकार के राजनैतिक अधिकार भी न दिए जाएं। तीन वर्ष बाद पुनर्विचार किया गया तथा उसे शेष आधी जागीर भी दे दी गयी तो भी उसे किसी प्रकार का प्रशासनिक या न्यायिक अधिकार न दिया गया। सरकार ने सारी जागीर में बन कटान के अधिकार भी अपने पास ही रखे।

सन् 1870 में राय ज्ञान सिंह का निधन हो गया तथा जागीर का उत्तराधिकार उसके पुत्र राय दलीप सिंह को मिला। अपने पिता की मृत्यु के समय वह अवयस्क था तथा जीर्ण-शीर्ण दशा की जागीर को उस काल से 1883 तक 'कोर्ट आव वार्डस' ने संभाली। तदुपरान्त पर्याप्त सुधरी स्थिति में यह सभी ऋणों से मुक्त दलीप सिंह को सौंप दी गई। पूरी जागीर जिसमें कोटकण्डी, चंग हार-कंडी कनावर, बल्हन तथा सैनसार सम्मिलित थे, का पुनर्गठन तथा पुनर्मूल्यांकन किया गया। मूल्य 10,000 रु. वार्षिक निर्धारित किया गया। जागीरदार का अधिकार उच्च स्वामी जैसा हो गया। इमारती लकड़ी के वनों पर सरकार का एक छत्र अधिकार हो गया। जागीर में प्रायः 2000 वार्षिक मूल्य की मुक्त भूमि भी थी। राय दलीप सिंह को अच्छी शिक्षा मिली। वह उर्दू व अंग्रेजी पढ़ लिख सकता था। छोटे मुकद्दमों में उसे मजिस्ट्रेट तथा मुनसिफ के अधिकार अपने प्रदेशान्तर्गत प्राप्त थे।

वह कांगड़े से वायसराय के दरबार में सातवां दरबारी था। वह कूल्लू के स्थानीय बोर्ड कांगड़ा का भी सदस्य था। उसका मण्डी तथा नादौन के राजपरिवारों में विवाह हुआ था। उसका कोई पुत्र नहीं था उसका चचेरा भाई हीरा सिंह शिमला की सांगड़ी जागीर का स्वामी था।

अध्यक्ष,
यशपाल साहित्य परिषद
अपर बाजार नादौन 177 033
जिला हमीरपुर, हि. प्र.

विविध-विचित्र भारत

—आशा शैली

छोटा सा गांव कच्चे पक्के मकान। कहीं खपरैल की छत तो कहीं घास की। बीच-बीच में पक्के बने मकानों के पीछे से झांकते पेड़ों पर लटकते वाये के घोंसले नजर आ जाते, तो एक मनमोहक दृश्य में आंखे बन्ध जाती। सुबह सबेरे हम आंखें ही मल रहे थे कि पानी से भरे घड़े सिर पर रखे कोमलांगी ललनाएं जिस तेजी और फुर्ती से दुपट्टे लहराती डोल रही थीं, वह देखते ही बनती थी।

जिला ऊना हि०प्र० में आकाश छूता गांव, गुगलेहड़, जहां कभी गुग्गा (नाग) देवता की पूजा हुआ करती थी, हम लोग एक विवाह के सिलसिले में यहां आए थे। रात हम देर से पहुंचें, थकावट के कारण जल्दी ही सो गए। (वैसे भी गांव की रात नीरस होती है) किन्तु प्रात: उठते ही जो दृष्य सामने था वह न केवल एक रात बलिक कई जन्मों की थकान दूर करने वाला था। जहां हमें ठहराया गया था, उस घर के कच्चे गोबर लीपे आंगन, घर अपनी सादगी की अनोखी छटा दिखा रहे थे। मेरी बारह बर्षीय बेटी अपने हमजोली बच्चों के साथ रम गई। गांव के बच्चों के साथ पशुओं का चारा काटती झूला झलती, सारा गांव घूम आई। रात उसने मुझे एक समाधि के बारे में बताया, जो उसने गांव में देखी थी।

समाधि देखने के बाद मुझे तलाश हुई ऐसे आदमी की जो उसका इतिहास जानता हो। अत्यन्त जीर्ण अवस्था में पड़ी यह समाधि सोहलवीं शताब्दि में बनी बताई जाती है। प्रचलित मत के अनुसार यहां नाग देवता की स्थापना गुसाई सम्प्रदाय के सन्तों ने की थी। यह गांव इन्हीं गुसाई लोगों का बसाया हुआ है। ज्वालामुखी से लगभग 68 कि० मी० की दूरी पर बसे इस गांव का नाम गुग्गा देवता के नाम पर गुगलेहड़ पड़ा। यह लोग शिव के उपासक थे। और जहां शिव होंगे वहां नाग क्यों न हो? इस छोटी सी समाधि के अन्दर शिवलिंग की स्थापना इस बात का प्रमाण है कि यह लोग शैव ही थे। यही नहीं यह लोग कलाप्रिय भी थे, जिसका प्रमाण यह समाधि है। समाधि के आगे बने चबूतरे का हर पत्थर चौकोर तराशा हुआ है। इसी चबूतरे पर दो समानान्तर गमले स्थापित हैं, मानो गेट के खम्बे। चबूतरे पर ही क्या सारी समाधि पर चौकोर तराशे हुए पत्थर लगे हुए हैं। इसी समाधि के अन्दर एक पत्थर का गोल दिया रखा हुआ है। इस दिए का व्यास एक फुट है। समाधि की छत और दीवारों में दरारें पड़ी हुई हैं फिर भी इसकी मजबूत दीवारों में समय के हस्ताक्षर पहचाने जा सकते हैं।

गुसाईं लोग संख्या में कई जान पड़ते हैं, क्योंकि यह समाधि उनके गुरू की है। वे लोग इस गांव को आश्रम का रूप देकर यहां रहते थे और सांसारिक राग द्वेष से अलग थे। इनकी कलाप्रियता का प्रमाण यह आश्रम और इसके चारों की प्राकृतिक छटा है। समाधि के प्रांगण में खड़े होकर चारों ओर देखने पर वृहत् कांगड़ा के दर्शन होते हैं। यहां से केवल मात्र दो किलो मीटर की दूरी पर सोमभद्रा (स्वां) नदी दिखाई देती है। जिसका विस्तृत मैदानी मात्र अपनी हरियल छटा दिखाता है। अब इसी सोमभद्रा पर चार पुल इसी क्षेत्र में लगाकर हिमाचल सरकार ने यातायात सुगम कर दिया है।

लगभग 35 वर्ष पूर्व इस समाधि के किनारे वाले खेत की खुदाई की गई, जिसमें एक विशालकाय मिट्टी का मटका प्राप्त हुआ। उस समय अन्तिम गुसाईं जिन्दा थे अनुमान के अनुसार गुसाईं लोगों में किसी बात पर झगड़ा हुआ और उसमें एक साधु मारा गया। बाकी साधुओं ने पुलिस के डर से उसे उठाकर, इस मटके में डाल कर जमीन में दबा दिया। जो कालांतर में खुदाई करने पर नर कंकाल के रूप में मटके में पाया गया।

तत्पश्चात् गुसाईं मत का अन्तिम साधु लगभग 23 वर्ष पूर्व एक परिवारिक झगडे का शिकार हो गया। कहा जाता है कि उस अन्तिम गुसाईं के किसी शिष्य के घर चोरी हो गई। उसने गुसाईं से फरियाद की। गुसाईं ने ध्यान करके उसे मकान का रंग, दिशा, स्थिति और कमरा, यहां तक कि वह बक्स भी बता दिया जिसमें चोरी गया समान रखा हुआ था। बदकिस्मती से यह चोरी उस शिष्य के सगे भाई ने की थी। माल बरामद होने पर उन (चोरों) लोगों ने गुसाईं की खूब पिटाई की। गुसाईं ने पीटने वालों को कुछ नहीं कहा, बल्कि पिटते समय यह कह रहा था कि', मुझे साधु होते हुए सांसारिक बातों में पड़ने का क्या हक था? मैंने पाप किया है, मुझे और मारो। इधर चोर उनको पीट रहे थे, उधर उनके घर में आग लग गई, और सब कुछ खाक हो गया। पिटाई से साधु मर गया।

तब से यह समाधि उजाड़ पड़ी है। यहां जो मुजारे जमीन पर कब्जा किये वे लोग दिया अवश्य जला देते हैं। सुना यह भी गया है कि इस समाधि का कोई भी पत्थर कोई भी आदमी घर नही ले जा सकता। अगर कोई ऐसा करता है तो उसके घर में सांप निकलने लगते हैं। हालांकि ये सांप काटते नहीं फिर भी भयभीत होकर लोग पत्थर वापस रख देते हैं।

महन्त अखाड़ा
रामपुर बुशहर
शिमला (हि. प्र.)

भूण्डा यज्ञ का ऐतिहासिक महत्व

—कृष्ण चन्द्र काएथ

देव भूमि हिमाचल का वैदिककाल से अपना एक धार्मिक-संस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व रहा है। जिसका वर्णन वेदों-पुराणो तथा उपनिषदों में बार-बार हर स्थान पर आया है। ऋग्वेद में वर्णित नदियों, यमुना, सतलुज, ब्यास, रावी और चिनाव का उद्गम स्थान भी इसी प्रदेश के भू-भाग से हुआ है। वैदिक कालीन ऋषि मुनियों की तपो-भूमि भी यही गिरी प्रान्त रहा है। इतिहास के लर्जते गर्जते प्रवाह के साथ-साथ विश्व की अनेकों जातियों उपजातियों के लोग आ आकर इस प्रदेश की सभ्यता में ऐसे विलीन हो गए, जैसे कि हजारों छोटी-2 नदियां महासागर में विलीन हो जाती हैं। उन जातियों और उपजातियों में विशेषकर, किन्नर गन्धर्व, यक्ष-नागा -कुशान, किरात, ब्राह्मण, कोल, खश और भोट जातियां अधिक चर्चित है। उपरोक्त सब प्रकार की जाति-उपजाति के लोग आज भी देव भूमि हिमाचल प्रदेश में पाए जाते हैं। जिनके परम्परागत अपने-अपने तरह-तरह के मेले उत्सव है आज भी वे धूम-धाम से मनाए जाते हैं।

हिमाचल प्रदेश के प्राचीन इतिहास पर कुछ एक इतिहास वेताओं ने शोध कार्य किया भी है। कुछ एक शोध विद्यार्थी आज भी इस कार्य में तल्लीन है। जिन इतिहासकारों की उपलब्धियां सामने आई है उनमें सर्वश्री राहुल सांस्कृतयान, डॉ. पदम चन्द कश्यप डॉ० वंशी राम शर्मा, खेम राज गुप्त सागर, मियां गोवर्धन सिंह, ठा० हीरा सिंह वजरेट, गौतम व्यथित, डॉ. खुशी राम गौतम और कांशी राम आत्रेय का नाम अग्रिम पंक्तियों में आता है। जिन्होंने प्राचीनता को नवीनता की दहलीज तक लाने में अथक परिश्रम किया है। परन्तु भूण्डा और शान्त जैसे महान् यज्ञों के ऐतिहासिक महत्व को जानने और खोजने का प्रयत्न इन्होंने भी नहीं किया।

वास्तव में इतिहास की कुछ एक धूल-धुसरित दबी-पड़ी पर्तें ऐसी भी होती है जिनकी गहराइयों तक जाने और उन पर शोध कार्य करने में बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यानी सही सामग्री जुटा पाना कठिन हो जाता है। ठीक इसी प्रकार से वैदिक काल से चले आ रहे इन दो यज्ञों के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व को ठीक से जानने और खोजने का उत्तरदायित्व कोई इतिहासकार अपने ऊपर लेता दिखाई नहीं देता। क्योंकि इसकी विषय वस्तु प्राप्त करने के लिए कितनी ही पुरानी हस्तलिपियां और स्थानीय देवताओं के पूर्व इतिहास एवं पुराने लोकगीतों और जनश्रुतियों का संग्रह करना होगा।

स्थानीय पंडितगण भूण्डा-यज्ञ का अर्थ भू+अण्डा) (भू+अण्डा=भूण्डा) अर्थात ब्रह्माण्ड शान्त का अर्थ शान्ति से लगाते यानी भूण्डा और शान्त सकल ब्रह्माण्ड की शान्ति के लिए किए जाने वाले यज्ञ से लगाते है। उनका मत है कि इन यज्ञों के करने से क्षेत्रीय लोग बड़ी-बड़ी प्राकृतिक विपदियों से बच जाते हैं। यानि प्राकृतिक प्रकोप टल जाते हैं। समय-समय पर बारिश बरसती है। अनाज और फल प्रचुर मात्रा में पैदा होते हैं। धन-धान्य में वृद्धि होती है। मनुष्य के मन की अशान्ति मिट जाती है।

भूण्डा कहां और कब होता है :

यह लिखना अति आवश्यक है कि भूण्डा और शान्त नामक यज्ञ किन-किन देवस्थलों पर किए जाते हैं। इस प्रकार के दोनों यज्ञ हिमाचल प्रदेश में जिला शिमला और जिला कुल्लू में होते हैं। इन देवस्थलों के नाम निरमण्ड नगर, निरत,खढाण, खोली, पुजारली (समरकोट) बच्छुच दलगांव, कुलगांव (छवारा) नण्डला है। इन स्थानों पर यह यज्ञ बीस पच्चीस बर्ष के अन्तराल में होता है। शान्त यज्ञ जिला शिमला के ऊपरी भाग में हर देव स्थलों पर होता है। इन दोनों तरह के यज्ञों के समय हजारों की संख्या में दर्शक इकट्ठा होते हैं। और यह यज्ञ चार-चार दिनों तक चलते हैं और यज्ञ विशेषकर दिसम्बर महीने में मनाए जाते हैं। लोगों का विश्वास है कि इस प्रकार के यज्ञ करने के तुरन्त बाद मन वांच्छित हिम-पात होता है।

ऐतिहासिक महत्व :

कहा जाता है कि एक समय में सकल पश्चिमोत्तर, हिम गिरी भू-भाग में नाग जाति का प्रभुत्व इष्ट नाग को मानते थे। नाग सम्प्रदाय और शिव सम्प्रदाय के बीच तब भारी टक्कर होती रहती थी। यहां तक कि कभी-कभी एक सम्प्रादाय दूसरे सम्प्रदाय के लोगों पर आक्रमण कर देता था और भयंकर युद्ध छिड़ जाता था। खश जाति के लोग शिव सम्प्रदाय में आते थे। वे महेश्वर, रूद्र, शिव, पशुपति और महादेव देवताओं के उपासक माने जाते थे। नाग जाति के देवताओं को वे दैत (दैत्य) कहा करते थे। (आज भी पहाड़ी भाषा में विशालकाय सांप को दैत कहा जाता है।) एक समय वह वह भी आ गया जब खश सम्प्रदाय के लोगों ने राजा कलिन्दराज (केन्दली राज) की शक्ति से नाग सम्प्रदाय पर निर्णायक हमला किया। जिसमें नाग सम्प्रदाय की पराजय हुई और भारी जान-माल की हानि हुई। पश्चिमोत्तर भारत से लगभग नाग जाति का अन्त हो गया। जो नाग-जाति के लोग कहीं भाग न सके वे खश जाति की अधीनता स्वीकार कर उनकी सभ्यता से घुल-मिल गए। इसी विजय की याद में भूण्डा यज्ञ किया जाता है। आज भी किसी नाग-देवता को इस यज्ञ में भाग लेने की अनुमति नहीं। नाग देवताओं के कितने प्रसिद्ध देव-स्थल आज इन क्षेत्रों में प्रतिष्ठित है, जिनमें सुकेत में माहुनाग, किन्नौर में बेरंग नाग (साँगलाह) रोहड़ू तहसील के नावर परगना में गोलीनाग प्रसिद्ध है।

आखिर कार यह भूण्डा यज्ञ मनाया कैसे जाता है :

यह प्रश्न पाठक के मन में बार-बार उद्वेलित होता है। भूण्डा यज्ञ को मनाने के लिए एक बर्ष पूर्व ही शुभ-मूहर्त निकाला जाता है। जिस देव स्थल में यह यज्ञ किया जाना होता है, उस क्षेत्र के लोग आपस में फांट (चन्दा) डालते हैं। जो मांग (फांट की वह विधि जो पहले भूण्डा यज्ञ की समाप्ति

के अगले वर्ष से ही हर वर्ष अनाज के रूप में वसूल की जाती है, इसके इलावा भिन्न प्रकार से बसूल की जाती है। इस प्रकार से अन्न और धन एकत्रित किया जाता है। जिससे कम से कम बीस हजार लोगों के लिए कम से कम छः दिन का राशन और आवश्यक नकदी बनती है। भूण्डा यज्ञ के लिए निकाले गये दिन से छः महिने पहले मूंजी (मूंज घास) काटने का दिन निकाला जाता है। इस मूंजी से लगभग 500 मीटर लम्बा और मोटा रस्सा तैयार किया जाता है। जिसे स्थानीय भाषा में बर्त कहा जाता है। कहा जाता है कि यदि इस बर्त को बनाते समय भूण्डा नियमों का वास्तविक रूप से पालन न किया जाए हो तो यह बर्त सांप बनकर भाग जाता है। इस लिए इसको तैयार करते समय जैली-बेड़ा (एक खास जाति जो केवल बर्त बनाने और उस पर सवारी करने का धन्धा करती है। इस प्रकार की जाति के परिवार केवल एक या दो ही सारे हिमाचल प्रदेश में होंगे) एक समय भोजन करता है। भूण्डा सम्पन्न होने तक ब्रह्मचार्य का पालन करता है। नित प्रातः ठण्डे पानी से स्नान करता है। नख और केश नहीं काटता है। प्रतिदिन बेड़ा सात हाथ लम्बी रस्सी बनाता है। जब यह बर्त (रस्सा) बनकर तैयार हो जाता है, तब देवस्थल के कारदार (मन्दिर की कमेटी के सदस्य) अपने निकट और दूरस्थ क्षेत्र के देवी-देवताओं को यज्ञ का निमंत्रण भेजते हैं। साथ में ही सरकार से भूण्डा यज्ञ के अन्तर्गत शान्ति बनाए रखने के लिए पुलिस सहायता भी मांगी जाती है। इस प्रकार के प्रबन्ध होने के पश्चात् भूण्डा यज्ञ का पक्का दिन और मुहूर्त निकाला जाता है।

भूण्डा यज्ञ के पहले दिन को सगेड़ा कहा जाता है। इस दिन वे सभी देवी-देवता व अन्य खुन्द (वीर) इकट्ठे होते हैं। उस दिन देव-स्थल की शोभा देखते ही बनती है। खुन्द लोग (बहादुर लोग) अपने-अपने देवी-देवताओं के साथ नाचते-गाते भिन्न-भिन्न दिशाओं से आते हैं। स्थानीय देवता के के कारदारान उनके स्वागत में देवता की पालकी सहित उपस्थित रहते हैं। उसके उपरान्त सभी देवताओं के साथ पहुंचे हुए खुन्दों (वीरों) के लिए राशन पानी आदि उनके कैम्प (पड़ाव) में पहुंचा-पहुंचा कर दिया जाता है। मीलों दूर तक रात को आग के कुण्ड जलते दिखाई देते हैं। एक अच्छी खाशी छावनी का सा दृश्य दिखाई देता है। भूण्डे में पधारे हुए अतिथि गण सारी रात ढोल-नगाड़ों की धुन पर नाचते-गाते दीखते हैं।

दूसरे दिन शिखा फेर होता है :

शिखा फेर एक प्रकार की पूजा होती है जो छः-छः सात-सात मन्जिलों के मन्दिरों के छतों पर होती है। यूं भी शिखा का अर्थ चोटी होता है। यानी मन्दिरों के छतों के चारों ओर घूम कर यह पूजा की जाती है। यह पूजा उन नाग राजाओं की प्रेतात्माओं की सन्तुष्टि के लिए की जाती है। जो श्री केन्दली राज आदि खशों के साथ लड़ते समय युद्ध में मारे गए थे। कुछेक पूजाएं काली माता के लिए की जाती है। इन सब पूजाओं में बड़े-बड़े बकरों की बलि दी जाती है। कहा जाता है कि यदि बकरों की यह बलि न दी जाए, तो भूण्डा यज्ञ के दृश्य को देखने के लिए एकत्रित अदृश्य प्रेतात्माएं क्रोधित हो जाती है और किसी भी प्रकार का अनिष्ट कर बैठती है।

तीसरे दिन प्रातः पौ फटने से पहले-पहले मन्दिर का बूढ़ा देवता जिसके नाम से भूण्डा यज्ञ मनाया जाता है, पास में बहने वाली पवित्र नदी में स्नान करने जाता है। इस दृश्य को देखने के लिए लोग सारी रात जागते रहते हैं। उस समय देवता की पालकी बड़ी तीव्र गति से नदी की ओर बढ़ती है, जिसको वश में करना कठिन हो जाता है। उसके साथ-साथ बर्त जो दैत (दत्य) का प्रतीक मानी जाती है, जिसका पहला सिरा सात मुख वाले नाग का होता है और दूसरा नाग की पूंछ की तरह बारीक बना होता है। इस बर्त को भी उसी नदी के पवित्र तालाब में पानी पिलाया जाता है। कहा जाता है पानी पिलाने से बर्त मजबूत बन जाती है। बर्त के पानी में पड़ने से पहले ही बूढ़ा देवता अपने मन्दिर में लौट आता है। उसके बाद दिन में एक बजे यानि सायं एक से दो बजे के बीच बर्त को निश्चित ऊंचाई से निचाई की ओर मजबूती से बांधा जाता है। जिसको बांधने का काम खुद लोग अपने हाथों से करते है।

बेड़ा (जैली) डालने की प्रक्रिया :

जब बर्त ठीक तरह से सुदृढ़ रूप से बांधी गई मानी जाती है तब बेड़ा उस देवता की पालकी के सामने वाले भाग पर बैठ कर आता है। जो भूण्डा यज्ञ में वरिष्ठ स्थान पर बैठा होता है। यानि वही यज्ञ में ज्येष्ठ देवता माना जाता है। जैली को उस स्थान पर लाया जाता है, जहां से उसको नाग रूपी बर्त पर सवारी करके नाग (दैत्य) का मान-मर्दन करना होता है। जैली वास्तव में देवता का मानवीय रूप होता है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में यदि कोई राजा पराजित हो जाता था और पकड़ा जाता था। तो विजयी राजा उसकी पीठ पर बैठकर सवारी करता था। यानि उसको अपना दास बनाता था। ठीक उसी प्रकार से खश-कनैत और ब्राह्मण जाति के लोग आज भी बेड़ा डालकर तत्कालीन नाग पराजय तथा अपनी विजय की याद ताजा करते हैं। बेड़ा जब बर्त पर बैठाया जाता है तो उसको ठीक प्रकार सन्तुलित रूप से घोड़ी (काठ का बना यन्त्र) पर बिठाया जाता है। सूत की पक्की डोरियों से बांधा जाता है। ताकि वह बीच में ही फंस जाए। यह बांधने वाले एक खाश वंश के लोग होते हैं। जिनको मन्दिर से प्रचलित रिवाज के अनुसार ईनाम दिया जाता है जो अशर्फी और सोने की मोहरे होती है। जैली का दूसरे स्थान पर सुरक्षित पहुंचना शुभ माना जाता है।

जब बेड़ा दूसरे सिरे पर पहुंचता है तो वह पहुंचने पर यदि किसी भी वस्तु को हाथ से छुए, तो वह वस्तु उसको देनी होती है। इस प्रकार से जैली को उस दिन ढेर सारी सम्पति मिलती है। मन्दिर की ओर से हजारों रुपये ईनाम दिया जाता है। उसकी स्त्री को सोना चान्दी उपहार दिया जाता है। सुना जाता है कि आज तक कभी कोई बेड़ा नहीं मरा है। इस प्रक्रिय के पूर्णा होते ही उपरान्त भूण्डा-यज्ञ सफल माना जाता है। उस शाम को सभी खुन्दों और अतिथियों को एक-एक बकरा और राशन भोज के लिए दिया जाता है।

चौथे दिन छवड़ छनी होती है। इसमें एक बहुत बड़ा मण्डप कई प्रकार के रंगों से लिखा होता है। जिसमें भगवान परशुराम प्रतिष्ठित होते है। जो भूण्डा यज्ञ के सम्पन्न होने की घोषणा करते हैं। इस खुशी में बुलाए गए देवी-देवताओं की पालकियां भगवान परशुराम के उठते ही मण्डप में प्रवेश करती है। लोगों का विश्वास है कि जिस देवता की पालकी सबसे पहले

मण्डप में प्रवेश करती है, वही देवता सबसे शक्तिशाली माना जाता है। इसके साथ ही उथल-पुथल (अतिथियों का जाना) शुरु हो जाती है। मन्दिर के कारदार सूखा आटा हवा में बिखेरते हैं, जो एक प्रकार की खुशी का उद्‌घोष होता है। सभी ही देवी-देवता अपने-अपने देव-स्थानों को अपने खुन्दों के साथ लौट जाते हैं।

जन श्रुतियों और लोकवाद के अनुसार तथा पुराने गीतों के सुनने तथा देवी-देवताओं के प्राचीन इतिहास की कुछ टूटी-फूटी कड़ियों के आधार पर लेखप्रस्तुत किया गया है। परन्तु वास्तविक रूप से इस विषय पर आगे शोध कार्य करने की आवश्यकता है। क्योंकि पर्वतीय समाज के भीतर धार्मिक सांस्कृतिक और भावनात्मक एकता उत्पन्न करने हेतु, अनेकों ऐतिहासिक स्मृतियां इन उत्सवों में आज भी देखने और समझने को मिलती है।

ऐरन बिला वर्मा लाल
शिमला

जन मानस की दिव्य आस्था का केन्द्र दलाश (कुल्लू) महादेव का भव्य मन्दिर

—ठाकुरदत्त शर्मा "आलोक"

हम जाते हैं और श्रद्धा के दो फूल चढ़ा कर लौट आते हैं, और लौट आते हैं, एक अप्रत्यक्ष आशीर्वाद की किरण लेकर; लौट जाते हैं यह समझ कर कि प्रभु हम पर अवश्यमेव कृपा करेंगे। यही सच्चा विश्वास, प्रभु आर्शीर्वाद की किरण से हमारे अर्न्ततम को प्रकाशित कर देता है। सहज में ही यह बात समझ में आती है कि क्यों कर कोई पत्थर से बनी इन प्रतिमाओं के समक्ष जी भर कर रोता है, अपने दुखों का प्रकटीकरण करता है और गिड़गिड़ाकर कर वरदान मांगता है। क्या मानव जगत श्रद्धामय विश्वास के नाम पर पागल तो नहीं हो गया। पत्थरों से वरदान मांगता है; रोता हैं; चिल्लाता है, किन्तु इन विश्वास से सिक्त बातों को यदि हम हृदय से महसूसें तो उसमें कुछ न कुछ सच्चाई मुखर: हो बोलती है। किम वदन्ति प्रचलित है कि "मानो तो देव, नहीं तो पत्थर"। इन मन्दिरों एवं मूर्तियों में प्रभु अंश है, इसी विश्वास से हमारी श्रद्धामयी आस्थाएं अक्षुण्य बनी हुई हैं।

आटर सिराज कुल्लू, दलाश का यह मन्दिर भी कुछ ऐसी ही कहानी कहता है। दलाश गांव के प्रथम कोने पर निर्मित यह मन्दिर भारतीय संस्कृति की जीवन्त धरोहर हैं। दलाश मन्दिर के चारों ओर घड़े पत्थरों से निर्मित दीवार बनी हुई है। दीवार के मध्य में मन्दिर प्रवेश का स्थान है। मंदिर में प्रवेश करते ही श्रद्धा से मस्तिष्क झुक जाता है। मन्दिर के मुख्य द्वार को खोलने से पता चलता है कि इस मन्दिर में शिव-लिंग है। मुख्य द्वार पर ज्यों ही अन्दर जायें तो दाई ओर शिवजी के नंदी बैल की मूर्ति दिखाई पड़ती हैं। स्थानीय लोग इसे 'केदार बाच्छू' के नाम से सम्बोधित करते हैं। स्थानीय लोगों का विश्वास है कि केदार बाछु के साथ पांच बार माथा ठनकाया जाये तो वरदान रुप में घर गाय एक हृष्टपुष्ट बछड़े को जन्म देती है।

इन्द्र देवता भी जल-वृष्टि नहीं करते तो यहां के जन वासी जगेसर महादेव के पास "झाड़ा" नामक एक छोटा सा उत्सव मनाते हैं और विनती करते हैं कि हे जगेसर (जगतेश्वर) महादेव ! हमारी इस संतप्त धरा को पानी दे। कभी इस विश्वास को पूरा देखा गया है।

इस मन्दिर का निर्माण कब हुआ ? अनुमान लगाना कठिन है। क्योंकि यहां का कोई लिखित इतिहास नहीं है, जिसके पन्नों को उलटाया या पल्टाया जा सके। जनश्रुति के अनुसार यह बात प्रसिद्ध कि दलाश से दो योजन कीदूरी पर गांव रिबाड़ी के अति समीप गंठवा नामक गांव है जो एक हरिजन

वस्ती है वहीं के एक साधु स्वभाव के हरिजन व्यक्ति लूहरी के समीप "ठोह" नामक ग्राम के खेतों में हल चला रहा था। हल चलाते-चलाते उस साधुनुमा कृषक के कानों में धरती से आह की आवाज सुनाई दी। मानो उसके हल चलाये जाने से कोई धरा निवासी प्राणी दुःखी हुआ हो। वह साधारण किसान कुछ बिदका और जानने के लिए हल की नोक के पास झुका और देखा एक मुखौटा जो मिट्टी से लिपटा हुआ था। मुखौटे से आवाज आ रही थी, एक बार वह आवाज मनौती के रूप में पंचम स्वर में उस कृषक के कानों में गूंजने लगी कि "मैं उस खेत में पड़ा हूं, मेरा कोई मन्दिर नहीं है, मेरा मन्दिर बना देखो" किसान ने पूछा देव ! मैं कहां बनाऊं ? फिर आवाज आई कि चींटी का चलता हुआ समूह जहां रुक जायेगा, वहीं मेरा मन्दिर बना दें। कृषक ने उसी चिंटी के समूह का अनुकरण किया और उस स्थान पर पहुंचा जहां आज महादेव का यह मन्दिर बना हुआ है। दलाश कुल्लू जिले का बहुत ही स्वास्थ्य बर्द्धक व रमणीक स्थान है जिनका अप्रितम सौंदय पर्यटन निगम की नजरों में चढ़ा नहीं अन्यथा यह स्थल पर्यटकों के लिए एक सुन्दर स्थली है। "दलाश" शब्द द्वादश शब्द का अपभ्रंश रूप है और ऐसा विश्वास किया जाता है भगवान शिव का जो शिवलिङ्ग यहां है, वह द्वादश शिवलिंग है, जिसकी स्थापना यहां हुई है।

बम-बम बोले हर-हर महादेव आदि कह कर मूर्ति के पास रखे जल का चरणामृत बड़ी श्रद्धा से लेते हुए, आंखों पर हाथ फेरते हुए बार-बार मूर्ति को स्पर्श करते हुए यह भी ध्यातव्य है कि कभी यह मूर्तियां, ये मंदिर पत्थर रुप थे। किसी मूर्तिकार शिल्पी ने इन्हें भव्य रुप में परिणत किया है। वे कौन थे ? कुछ भी बताना कठिन है किन्तु वे महान् थे उनका जीवन महान् था, तपो-त्याग की कहानी थी जहां वे पत्थरों में प्राण फूकंने के अधिकारी थे क्या वे लोग अपना नाम परिचय या चिन्ह कुछ भी रख छोड़ने में असमर्थ थे- नहीं, वे सब कुछ कर सकते थे किन्तु वे यश कामना से दूर रहे थे, आज भी उनके द्वारा निर्मित न जाने मंदिर और मूर्तियां उनके यश का गान मूक भाव से कर रही हैं।

आटर सिराज के प्रत्येक जन मानस की इन मंदिरों के प्रति गहरी श्रद्धा है यूं तो सम्पूर्ण कुल्लू जिले में हर गांव में कोई न कोई मंदिर देखने को अवश्य मिलेगा इसी लिए सम्पूर्ण कुल्लू देव भूमि के नाम से जगत विदित है किन्तु आटर सिराज के दलाश में बने जगेसर महादेव मंदिर की अपनी ही गरिमा है।

लोक सम्पर्क विभाग,
हिमाचल प्रदेश,
शिमला।

काँगड़ा प्रदेश खण्ड की धार्मिक परम्परा

—रमेश कुमार पराशर

भारतीय इतिहास के धार्मिक विवेचन विश्लेषण के प्रसंग में उत्तराखण्ड का महत्व सर्वोपरि रहा है। सिद्ध योगी उत्तरांचि जैसे महावाक्यों से यह बात पूर्णतया स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीन काल में भारत वर्ष का यह उत्तराखण्ड आध्यात्मिक अनुभव के जिज्ञासुओं के लिए न केवल आकर्षण का केन्द्र रहा है, अपितु उनकी जीवन व्यापनी साधनाओं की भी लीला भूमि रही है। आज भले ही उत्तराखण्ड का यह महत्व भौतिकवादी चश्मे वालों के लिए न रहा हो, किन्तु सच्च बात तो यह है कि आत्म शान्ति के पिपासुओं के लिए इसका महत्व आज भी है और सदैव अक्षुण्ण रहेगा।

प्राचीन कांगड़ा प्रान्त इसी उत्तराखण्ड का हृदय प्रान्त है और भारत के चार सिद्ध पीठों में से सुप्रसिद्ध जालधर पीठ की अवस्थिति इसी प्राचीन कांगड़ा या प्राचीन त्रिगर्त प्रान्त शाकल या स्यालकोट के पाकिस्तानी काश्मीरी भूखण्ड से लेकर शिवालिक के निम्नवर्ती मैदानी स्थल खण्ड के सम वेश पूर्वक सोलन की पहाड़ियों तक विस्तीर्ण था और उस समय पौंग बांध में अवस्थित अवसका पड़ा किन्तु प्राचीन महाराजा कप की राजधानी से सम्बंधित था। इसी भू-भाग पर स्थित जालंधर पीठ पर पौराणिक कथा के अनुसार भगवान शंकर के द्वारा जालंधर असुर की मृत्यु के पश्चात् एकादश रुद्रों की स्थापना की गई है। यह एकादश रुद्र स्थान शिव के ग्यारह ज्योतिलिंगों के जाज्वल्यमान सिद्ध पीठ हैं। पहले भी और अब भी असंख्य साधकों को इन स्थानों पर सिद्धियां प्राप्त हुई हैं। स्वामी विवेकानन्द जी ने भी श्री राम कृष्ण परमहंस के आदेश पर नवरात्रों से लेकर 27 दिन तक इन स्थानों का सेवन किया था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपासना की दृष्टि से यह भूमि, शैव, शैवाचार, के अन्तर्गत आती हैं। कहने की जरूरत नहीं है कि शिव और शक्ति अभिन्न हैं शिव की उपासना के साथ साथ यहां पर शक्ति पीठों की प्रतिष्ठा भी अत्यंत प्राचीन काल से है। इसमें संदेह नहीं कि समय-2 पर इन पीठों पर बने मन्दिरों का जीर्णोद्वार होता रहा है। इन पीठों में सुप्रसिद्ध मन्दिर हैं, ज्वाला जी का मन्दिर, कांगड़ा का वज्रेश्वरी देवी का मन्दिर, बनखंड़ी का बगला मुखी का मंदिर, चिन्तपूर्णी का मन्दिर, कटोच वंशीय राजाओं का आशापुरी का मन्दिर तथा बिलासपुर जिले में नयनादेवी का मन्दिर सुप्रसिद्ध मन्दिर है।

पौराणिक साक्ष्य के अनुसार भगवती सती में योगाग्नि के देह विसर्जित करने पर शिवजी उन के शव को लेकर जब पूज्य भूमि और कर्म भूमि भारत में घूमने लगे तो जहां-2 सती के अंश पड़ें वहां-2 शाक्त पीठों का निर्माण हुआ ॥ 56 ॥ शाक्त पीठों में से कांगड़ा में देवी का वक्ष, ज्वाला जी में जिव्हा

नयना देवि में 'नयन' गिरे यह तीन पीठ अत्यन्त प्राचीन है। शेष की प्रतिष्ठा देवि भक्त राजाओं और साधकों द्वारा हुई जिन्हें भगवती का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ था। इस प्रकार यह सिद्ध है कि कांगड़ा भूखण्ड में शिव शक्ति की उपासना की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है और यहां का लोक मानस शैवचार के संस्कारों से ओत-प्रोत है।

मध्य काल में जब सम्पूर्ण भारत में वैष्णव भक्ति का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, तब अनेक सिद्ध महात्मा और आचार्यों के प्रचार से भगवान विष्णु के अवतार राम, कृष्ण की उपासना पद्धतियों की परम्परा की शुरूआत भी यहां हो गई। कहना न होगा कि गुलेर-नूरपुर, जैसिहपुर, कुल्लू के राजाओं का सम्बन्ध राजस्थान के रजवाड़ों से रहा और वहां से भी वैष्णवाचार के संस्कार यहां पहुंचे। नूरपूर के महाराजा जगता सिंह, मीरा बाई द्वारा उपासित भगवान कृष्ण की मूर्ति को बड़े युक्तिपूर्ण ढंग से जोधपूर नरेश से लाए थे। इसका दान उन्होंने अपने तत्कालीन पुरोहित को दिलवाया था, जो मूर्ति आज भी नूरपुर के "ब्रजराज स्वामि के मन्दिर में पूर्णतया सुरक्षित है उस समय का मौलसिरि का वृक्ष भी राजस्थान से यहां लाया गया था। आज तो यह वृक्ष बहुत ही विशाल काय होकर खूब फूल-फल रहा है।" जगता सिंह से पहले यदि राजधानी के मन्दिरों की दृष्टि से निरीक्षण करने पर पता चलेगा कि वहां पर काली और शिव के मन्दिरों के अतिरिक्त और दूसरे मन्दिर नहीं हैं। नूरपूर का धर्मेड़ी अर्थात् धर्म मेघ शिव मन्दिर अपने चमत्कारिक प्रभाव के लिए प्रसिद्ध रहा हैं। वैष्णव स्थानों में वायुजी का और पौंग बांध में बद्रीविशाल का ठाकुरद्वारा रामोपासक वैष्णवों की प्रसिद्ध गद्दी रहा है। यहीं से प्रभावित हरिपुर का श्री रघुनाथ जी का मन्दिर और कुल्लू की रघुनाथ जी की यात्रा की प्रेरणा और शुरूआत के कारण रहे हैं। कुल्लू में जयपुर के वैष्णव आचार्य कृष्ण बिहारी का वैष्णवाचार के प्रचार में बहुत बड़ा योगदान रहा है। आज भी कुल्लू में कृष्ण बिहारी की गुफा विद्यमान है। इसके अतिरिक्त वहां पर परशु राम की गुफा भी है। इस गुफा का संबन्ध शाक्त-उपासना से है। कहना न होगा कि भगवान परशु राम राज-राजेश्वरी श्री विद्या के परम आराधक थे। त्रिपुरा रहस्य में दत्त गुरुद्वारा उनके श्री विद्या में दीक्षित होने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार चिन्तपूर्णि में धर्मशाल मंहता की वैष्णव गद्दी और चन्नौर के ठाकुर द्वारा में वैष्णव उपासना पद्धति का लोक मानस में संस्कार बैठाने का कार्य पूर्ण योगदान के साथ किया है। इसमें संदेह नहीं।

इसके अतिरिक्त, सिद्धों, पीरों, नागों परियों, नारसिंहों आदि आध्यात्मिक स्तर के कनिष्ठ देवताओं की उपासना भी लोगों में प्रचलित हैं। इनमें दयोटसिद्ध के अनुयाइयों की संख्या अधिक है। जिला हमीरपुर के बड़सर तहसील में शाहतलाई के पास यह सुप्रसिद्ध स्थान लोगों की तीर्थ यात्रा का लीला स्थल रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धार्मिक परम्परा की दृष्टि से कांगड़ा भू-भाग शैव-शाक्त और वैष्णव प्रभावों से ओत-प्रोत है। इनसे सम्बन्धित अनेक स्थान जगह-2 बिखरे पड़े हैं जहां आज भी यात्राएं होती हैं और आने जाने वाले श्रद्धालुओं के मनोरथ पूरे होते हैं। शाक्त पीठों पर से अधिकांश यात्री आते रहते हैं और श्रद्धा भाव से यहां पर आकर अपने को धन्य समझते हैं। इस प्रकार देव भूमि कांगड़ा का महत्व सदियों से बराबर चला आ रहा है। जरूरत इस बात की है कि इस सम्पूर्ण आकर्षण के मूल में जो आध्यात्मिक सत्य है उसका अनुभव और उस सच्चाई के मूल्य का बोध कैसे हो। उसका संरक्षण ही वास्तव में इन स्थानों की सही उपासना है और इनके प्रति सच्ची निष्ठा होनी चाहिए।

पाराशर ज्योतिष कार्यालय
डा० व गांव इच्छी, तहसील कांगड़ा
जिला कांगड़ा (हि०प्र०)

धागों का त्यौहार-रक्षाबन्धन

—सुदर्शन डोगरा

वर्षा ऋतु के आगमन पर भादों मास की पूर्णमासी को रक्षाबन्धन का त्यौहार मनाया जाता है। यह त्यौहार हिमाचल में ही नहीं अपितु समस्त भारत वर्ष में बड़ी श्रद्धा एवं उत्साह से मनाया जाता है। रक्षाबन्धन की पूर्णिमा से एक मास पूर्व ही बाजारों की दुकानें रंग-बिरंगी रखड़ियों से सज जाती हैं। धागों, रंग-बिरंगे फोम, जरी-तिल्ले, गोटे किनारी, प्लास्टिक की मूर्तियों, घड़ियों व मोतियों से निर्मित ये रखड़ियां अपनी चमक से दुकानों की शोभा में चार चाँद लगा देती हैं। प्रत्येक बहिन का यही प्रयत्न रहता है कि वह अपने भाई की कलाई को सुन्दर से सुन्दर राखी बांध कर सजा डाले।

जिन बहनों के भाई दूर होते हैं वे कई दिन पहले राखी खरीद कर डाक द्वारा भाइयों को भेज देती हैं। जिन बहनों के अपने भाई नहीं होते वे धर्म भाई बना कर उनकी कलाई पर राखी सजाती है। भाई राखी के बदले बहनों को कुछ रुपये देते हैं किन्तु रुपयों से भी कहीं अधिक है भाई का प्यार।

इस त्यौहार को मनाने का सूत्रपात कब हुआ। इस विषय में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु इतना अवश्य है कि वैदिक संस्कृति मे इस त्यौहार का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। आनादि काल में वर्षा ऋतु में ऋषि मुनि गृहस्थ लोगों के घरों में आकर चौमासे के दिनों में यज्ञ-हवन इत्यादि अनुष्ठान करवाया करते थे। इनके कार्यों में बिघ्न डालने हेतु राक्षस लोग अनेक रूप धारण कर उपद्रव मचाते थे। उपद्रवों के शमन हेतु मुनिगण अभिमन्त्रित रक्षा सूत्र यजमानों की कलाई में बांध देते थे। जिससे राक्षस गण समीप नहीं आ सकते थे। सम्भवतः रक्षा सूत्र का प्रारम्भिक सूत्रपात इसी भावना से हुआ होगा।

कालान्तर में उन्हीं ऋषि सन्तानों ने पुरोहित कार्य के आरम्भ से पूर्व रक्षासूत्र बांधने की परिपाटी को अपनाया। अब भी गांव में कुल पुरोहित रक्षाबन्धन के दिन अपने यजमानों के घर जाकर रक्षासूत्र बांधते हैं। बरसात के मौसम में आने वाली बाढ़ों, सर्प दंश तथा भयंकर रोगों से मुक्ति पाने के लिए कुलपुरोहितों ने अपने यजमानों को ये रक्षा सूत्र बांधने प्रारम्भ किए होंगे और उसी परम्परा में आज भी पुरोहित वर्ग अपने यजमानों को इस दिन रक्षा सूत्र बांधता है।

इसके अतिरिक्त वीर काल अथवा राजपूतों के राज्य काल में वीर माताएं तथा बहनें युद्ध के लिए प्रस्थान करने से पूर्व अपने भाईयों अथवा पुत्रों को माथे पर तिलक तथा कलाई पर रक्षा सूत्र बाँध कर विदा करती थी। कई वीरांगनाओं ने भी ऐसा रक्षासूत्र अपने पति की कलाई में बांधा है। युद्ध

को जाते हुए पति का कलाई में वे रक्षासूत्र बांध कर पति रक्षा की कामना करती थीं। कालान्तर में यह रक्षासूत्र भाई बहन के लिए रक्षाबन्धन के त्यौहार का रूप धारण कर गया। इस त्यौहार का सूत्रपात त्रेतायुग से भी पूर्व का है क्योंकि बहन सुभद्रा ने भी श्री कृष्ण को राखी बांधी थी।

रक्षाबन्धन के साथ चारों वेदो का सम्बन्ध बतलाया जाता है। ऐसा कहा गयाहै कि मानव समाज की रक्षा हेतु चारों वेद इसी पूर्णिमा को अवतरित हुए थे।

एक बार देवता और असुरों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी देवता युद्ध में पराजित होने लगे। इन्द्र ने चिन्तित हो कर अपने गुरू से रक्षा के लिए प्रार्थना की। देवताओं के गुरु ने एक यज्ञ का आयोजन किया यज्ञ की समाप्ति पर राजा इन्द्र की कलाई पर एक रक्षा सूत्र बांध दिया जो कि विजय का प्रतीक था। इस सूत्र के बन्ध जाने से इन्द्र के भीतर अपूर्व उत्साह और शौर्य भर गया जिससे देवताओं की विजय हुई। तभी से विजय की कामना के प्रतीक के रूप में राखी बांधने की परम्परा का सूत्रपात हुआ जिससे पुरोहित यजमान को, मां बेटे को, पत्नी पति को तथा बहनें भाई को रक्षा हेतु रक्षासूत्र बांधने लगी। राखी बान्धते समय आज भी पुरोहित इस मन्त्र का उच्चारण करते हैं :-

येन बद्धो बलिराजा, दानवेन्द्रो महाबला
तेन त्वामपि बधनामि, रक्षे मा चल मा चल।

अर्थात् जिस रक्षा सूत्र से शक्तिशाली राजा बलि को बान्धा गया था उन्हीं धागों से मैं तुम्हें बान्धता हूं। हे रक्षा सूत्रों, तुम विचलित मत होना।

रक्षा सूत्र का सीधा सम्बन्ध रक्षा है। पहले तो रक्षा हेतु सूत्र बांधा जाता था किन्तु अब बांधने वाली बहन की रक्षा का प्रण भी इस सूत्र में निहित है। जो भी भाई अपनी बहन द्वारा बांधें इस सूत्र में बन्ध जाती है उसका कर्त्तव्य बन जाता है कि वह बहन की रक्षा जान पर बाजी लगा कर करे। हमारा इतिहास इस प्रकार की अनेकों घटनाओं से भरा है। जब-जब किसी अबला ने स्वंय को संकट में पाया है, किसी भी वीर को राखी भेज कर रक्षा हेतु बुलाया है। भाई भी राखी पाकर रक्षा के लिए पहुंचे हैं भले ही उन्हें राखी का मूल्य जान से चुकाना पड़ा हो। सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपनी कविता की पंक्तियों में इस बात को बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है :-

वीर चरित्र राजपूतों का
पढ़ती हूं मैं राजस्थान।
पढ़ते-पढ़ते आंखों में
छा जाता राखी का आख्यान।
मैंने पढ़ा शत्रुओं को भी
जब-जब राखी भिजवाई
रक्षा करने दौड़ पड़ा
राखी बंध शत्रु भाई।

एक बार जब राणा सांगा की पत्नी कर्मवती ने देखा कि बहादुरशाह ने चितौड़ पर आक्रमण कर दिया है और उसकी रक्षा के लिए उसके पास कोई उपाय नहीं है तो माता कर्मवती ने एक दूत के हाथ हुमायूं को राखी भेजी और सहायता की प्रार्थना की।

कर्मवती की राखी को पाकर हुमायूं तुरन्त सेना लेकर उसकी रक्षा हेतु चितौड़ पहुंचा था। कितनी शक्ति है इस सूत्र में जो जाति और धर्म से अलग एक प्रेम और कर्त्तव्य का सम्बन्ध जोड़ती है।

हिमाचल प्रदेश के प्रत्येक कोने में रक्षाबन्धन को धार्मिक एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण माना जाता है। राखी पूर्णिमा को स्त्रियां प्रातःकाल स्नान करने के उपरान्त घर के दरवाजों, अन्न की पेड़ियों, गऊशालाओं, बाबा बालक नाथ के थड़े तथा तुलसी के थड़े पर काली मिट्टी के चोकोर, गोल अथवा त्रिभुज इच्छानुसार आकार के 6X6 इन्च के लगभग चौके से डालती हैं। सूख जाने पर उनपर भांन्ति-भांन्ति के रगोली चित्र बनाये जाते हैं। ये चित्र सफेद मिट्टी (जो गोलू कहलाती है) अथवा चावल पीसकर उनके सफेद घोल से बनाए जाते हैं। तत्पश्चात् इन चित्रों पर राखी और सवैंयों की खीर चढ़ाई जाती है। ये रंगोली चित्र जो दीवारों पर बनाए जाते हैं "गडारनू" कहलाते हैं। ऐसा समझा जाता है कि जिस घर के दरवाजे पर ये 'गडारनू' बने रहते हैं वहां किसी प्रकार की प्रेत आत्माएं प्रवेश नहीं करती। गडारनुओं पर चढ़ाई जाने वाली राखियों को स्त्रियां घर में ही मौली, गोटा, रुई और भुजपत्र लगा कर तैयार करती हैं। राखी से पूर्व आटे, सूजी अथवा मैंदे से सेमियां बनाना भी शुभ समझा जाता है।

इसी प्रकार के गोलाकार गडारनू घर के दरवाजों पर बनाए जाते हैं तथा उनकी पूजा करने के पश्चात सेवियां चढ़ाई जाती हैं। राखियां जो रक्षा बन्धन को बान्धी जाती हैं सैरी के त्योहार तक बन्धी रहती हैं तत्पश्चात् इन राखियों को सैरी की सक्रान्ति को नाई द्वारा लाई गई सैर की टोकरी पर चढ़ा दिया जाता है।

रक्षा बन्धन को गूगा का छत्र बान्धा जाता है और गूगा अनुयायी इस दिन से गूगा की वारें गाना प्रारम्भ कर देते हैं यह क्रम जन्माष्टमी के दूसरे दिन तक चलता है। अमर नाथ गुफा के दर्शनार्थ लाखों यात्री काश्मीर जाते है और भगवान शंकर के हिम लिंगों का दर्शन करते हैं।

भाषा एवं संस्कृति विभाग
हिमाचल प्रदेश
शिमला-3

विराट नगर हाटकोटी के देवालय

—देवी दत्त शर्मा

हमारा पहाड़ी क्षेत्र विभिन्न प्राचीन ऐतिहासिक झलकियों से भरपूर है। अपने धर्म पर चलने वाले और मर्यादा को कायम रखने वाले पाण्डव वीर भारतीय समाज में प्रशंसा के पात्र सदा ही रहे हैं। पात्रता और प्रशंसा का कारण उपरोक्त शीर्षक देवालय जीता जागता सबूत है।

जिला शिमला के जुब्बल तहसील में माता हाटेश्वरी का मन्दिर हाटकोटी नामक स्थान पर स्थित हिमाचल के प्रसिद्ध व महत्वपूर्ण मन्दिरों में से एक है। इस मन्दिर की चर्चा, माता की प्रसिद्धि के कारण शायद ही उत्तरी भारत के किसी समाचार पत्र अथवा पत्रिका ने न की हो। इस मन्दिर के उत्तर दिशा में लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित प्राचीनतम देवालय (मन्दिर) प्राचीन कला की झलक हैं। इस जगह का नाम विराटनगर है। साधारणतया लोग इसे पराट नाम से कहते हैं। यहां पर देवालय अर्थात देवमन्दिर स्थित है। इसके निर्माण की ऐतिहासिक भूमिका से पहले मैं इसकी कला पर प्रकाश डालना चाहता हूं। कला की दृष्टि से ये विशेष प्रकार के मन्दिर हैं। यहां प्रमुखतः दो ही मन्दिर हैं जो लगभग 200 मी० की दूरी पर एक दूसरे से दूर हैं। ये समस्त मन्दिर केवल पत्थर के ही बने हुए है। एक मन्दिर का सर्वेक्षण करने पर मैंने देखा कि इस मन्दिर में दो मंजिले हैं। बीच का भाग जो मन्दिर को ऊपर नीचे की मंजिल में बांटता है, पत्थर का ही है। इसकी अन्दर की दिवारें इस प्रकार की बनी हुई हैं कि मानो सीमेंट से बनी हो। इसकी बाहर की नक्काशी तो सचमुच ही चकित कर देती हैं। इसकी बाहर की दिवारों में पत्थरों को खुर्च कर जो नक्शे बनाए हुए है वे हमारे कलाकारों को निरन्तर प्रेरणा दे रहे हैं कि भारत तथा हिमाचल के इस भाग में किसी समय ऐसी कला भी थी। इन मन्दिरों की नीचे से ऊपर तक पत्थरों से इस प्रकार चिनाई की हुई है कि इसकी एक जान महसूस होती है। मन्दिर के आकार की आकृतियां बनाई हुई हैं। ऊपर की मंजिल में काट कर इतने भारी-2 पत्थर लगे हुए है, जिन्हें यदि आज लगाया जाए तो ऊपर पहुंचाने तक मशीनों का प्रयोग ही करना पड़ेगा।

इस मन्दिर की चित्रकला आज किस लेखक, कलाकार तथा इतिहासकार को सोचने के लिए बाध्य नहीं करती। हमारा यह बहुत बड़ा धन है। आज इन मन्दिरों में न कोई पुजारी है और न कोई मूर्ति और न ही इसकी देखभाल की कोई कमेटी। ये मन्दिर स्वयं ही अपने आप को सुरक्षित रखे आ रहे हैं।

इसके निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इस प्रकार से है—इन देवालयों से एक कि० मी० की ऊंचाई पर मटासा नामक गांव स्थित है। जब मैंने इस गांव में विद्यमान बुजुर्गों से इन मन्दिरों के बारे में पूछ-ताछ की तो मालूम हुआ कि ये उनके बाल्यकाल से लेकर वैसे के वैसे ही हैं। 90-95 वर्षों के दौरान से इसे बनाने वाले न किसी व्यक्ति के प्रयत्क्ष उदाहरण है और न ही मुरम्मत करने वाले के। बुजुर्ग इसकी पौराणिक कथा अवश्य बताते हैं कि जब पाण्डव बनवास में निकले थे तो अपने बनवास का कुछ समय उन्होंने इस जगह पर बिताया। कहते हैं कि उन्होंने ही अपनी यादगार में अपनी कला हमेशा जिन्दा रखने के लिए खिलोने के रूप में इन देवालयों का निर्माण किया था। खिलोने इसे इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि वे स्वयं इसमें नहीं रहते थे। पाण्डव वीर हट्टे-कटे थे। इस प्रकार के तंग मन्दिरों में वे नहीं समा सकते थे।

इन देवालयों के साथ ठीक दक्षिण में एक टीला है जिसे सुनपरी का टीला कहते हैं यह एक पर्वत की तरह है। इसके ऊपर हाटेश्वरी माता का उद्यान है। कहते हैं कि यह टीला यहां से बहुत दूर था और एक समय में पाण्डव को जड़ी-बूटी औषधियों की आवश्यकता पड़ी तो भीमसेन को उस पहाड़ की ओर भेजा, उसे दवाइयां नहीं मिली और उसने उस टीले को ही उठा कर वहां पर लाया। एक देवालय इस अधित्यका में ही स्थित है। कहते हैं कि पाण्डवों को यहां पर कुछ मुसीबत पड़ी थी जिसे हल करने के लिए उन्हें कुम्हारों (मिट्टी के बर्तन बनाने वाले) के पशु चराने पड़े थे अतः कुम्हारों के बनाए हुए टूटे फुटे बर्तन भी इस पर्वत को खोदने से मिलते हैं। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि पाण्डव यहां पर अवश्य आए थे और ये मन्दिर भी उन्होने ही बनाए थे।

अतः आज आवश्यकता है पहाड़ी नौजवानों को इस दिशा में सोचने की और इसका अनुकरण करने की। हमें खुशी है कि हमारी सरकार इन मन्दिरों की देख-रेख की ओर अपना दृष्टिकोण सकारात्मक बनाए हुए हैं। हमें अपनी इस प्राचीन कला पर अभिमान है।

डॉ० भड़ग तहसील जुब्बल
जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश

FORM IV

(See Rule 8)

1.	*Place of Publication*	... **Shimla**
2.	*Periodical of Publication*	... **Quarterly**
3.	*Printer's Name*	... **Narinder Kumar Arora**
	Nationality	... **Indian**
	(a) Whether a citizen of India	... **Yes**
	(b) If a foreigner, the country of Origin	... **N.A.**
	Address	... **New Shiva Printing Press, Hotel Tashkent, Room No. 9. Shimla-171003 (H.P.)**
4.	*Publisher's name*	... **Dr. B. R. Sharma**
	Nationality	... **Indian**
	(a) Whether a citizen of India	... **Yes**
	(b) If a Foreigner, the country of Origin	... **N.A.**
	Address	... **Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Shimla-171001**
5.	*Editor's Name*	... **Dr. B. R. Sharma**
	Nationality	... **Indian**
	(a) Whether a citizen of India	... **Yes**
	(b) If a Foreigner, the country of Origin	... **N.A.**
	Address	... **Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture and Language, Shimla-171001**
6.	*Name and address of individuals who own the news paper and are partners or shareholders holding more than one percent of the Total Capital*	... **Himachal Kala, Sanskriti, Bhasha Academy Shimla-171001**

I Dr. B. R. Sharma, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

(Sd.) Dr. B.R. Sharma.
Secretary

H.A.A.C.L. पंञ्जी संख्या 28271/75

1. निदेशक, शिक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा पत्राङ्क क. ई. डी. ऐन. एच. (8)-6(3)1/75. 24 फरवरी 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत ।

2. निदेशक पंचायत विभाग हि०प्र० द्वारा पत्र संख्या 7-3/66 पंच दिनांक 21 जुलाई, 1977 के अनुसार प्रदेश के खण्ड विकास तथा पंचायत पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत ।

सचिव, हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी, शिमला द्वारा प्रकाशित तथा न्यू शिवा प्रिंटिंग प्रैस, शिमला-171003 द्वारा मुद्रित ।